Chapter-7

## सप्तम अध्याय - वर्मा जी के उपन्यासों की भाषा- शैली

किसी भी साहित्यिक कृति को सम्माननीय स्थान दिलाने में भाषा-शैली का अपना विशिष्ट महत्व है। अनुकूल भाषा के अभाव में बड़े से बड़े साहित्यकार के भाव लिखित होकर भी अलिखित रह सकते हैं। किसी भी साहित्यकार की भाव सम्पदा उसकी कृतियों का वस्तुपक्ष है, वह उसके मानसिक व्यक्तित्व का अंग है, जिसे साहित्यिक कृति के रूप में प्रकट होने के लिए शाब्दिक स्वरूप ग्रहण करना पड़ता है। भाषा ही वह माध्यम है जिसकी सहायता से लेखक अपने भाव-संसार को पाठक के मनो-मस्तिष्क में संप्रेषित कर सकता है।[1] प्रत्येक साहित्यकार अपनी क्षमता के आधार पर भाषा के भण्डार से शब्द-मणियों का चयन कर अपनी कृति को सौन्दर्य प्रदान करता है। भाषा ही साहित्यकार की सफलता और असफलता की प्रथम कसौटी है। यों तो प्रत्येक कुशल साहित्यकार का अच्छा शब्द-पारखी होना नितान्त अपेक्षणीय है, किन्तु उपन्यासकार के लिए भाषा का विशेष महत्व होता है क्योंकि उपन्यासकार काव्यभाषा के समान अलंकृत और असामान्य भाषा का प्रयोग प्राय: नहीं करते। उपन्यासकार जिस विधा को लेकर चलता है, उसका क्षेत्र व्यापक और विशाल जन-समुदाय में प्रसृत होता है अत: जानी-पहचानी और नित्यप्रति प्रयोग में आने वाली भाषा में से अनुकूल और समुचित शब्दों का चयन कर उपन्यासकार अपनी भाषा-शैली में नवजीवन और नवविच्छित्ति भर सकता है।

एक विद्वान लेखक के अनुसार उपन्यास की भाषा वैदर्भी रीति के अन्तर्गत आगत प्रसाद गुण सम्पन्न होनी चाहिए।[2] उपन्यास की भाषा के अन्तर्गत सहजता, सुगमता, प्रवाहमयता, स्वाभाविकता, चित्रोपमता एवं विषयानुरूपता आदि गुणों की अनिवार्यत: अपेक्षा की जाती है। इन सबके यथावश्यक उपयोग से उपन्यासकार अपनी अनुपम शैली का निर्माण कर सकता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि भाषा भावाभिव्यक्ति का माध्यम है, उसी भाषा के प्रयोग की रीति या विधि को शैली कहा जा सकता है। किसी भी रचना की मौलिकता

---

1. "And of all the arts, Poetry, or creative literature is that in which the idealizing process can work most freely. In the first place, its medium language is the most flexible of all the mediums which the respective arts employ, and in the second it is the actual medium of thought and as such enables the artist to communicate most directly the mind of the spectator". W. Basil Worstfold: Judgement in Literature: Pg. 51-52

2- हिन्दी उपन्यास कला- डा० रामलखन शुक्ल- पृष्ठ 47

या विशिष्टता उसकी विशिष्ट रीति पर ही निर्भर करती है। किसी भी रचना में मौलिक विचार या भावों का होना उतना अनिवार्य नहीं है जितना उसकी अभिव्यक्ति का ढंग। इसी तथ्य का विवेचन करते हुए अरस्तू ने कहा है -"अब हम शैली का विवेचन करते हैं क्योंकि केवल वर्ण्य विषय पर अधिकार होना पर्याप्त नहीं, किन्तु यह आवश्यक है कि हम उसको उचित रीति से प्रस्तुत करें, और इससे वाणी में वैशिष्ट्य(चमत्कार) का समावेश होता है।"एक कुशल साहित्य कर्मी शब्दों को उचित और विशिष्ट क्रम से व्यवस्थित कर अपनी रचना में वह चमत्कार उत्पन्न कर सकता है जिससे उसके व्यक्तित्व की विशिष्ट झलक उसकी रचना में प्रतिबिंबित हो जाती है। बफन( Buffun ) ने तो शैली को ही व्यक्ति कह दिया है -"Style is the man himself" क्योंकि प्रत्येक लेखक अपने निजी अनुभव क्षेत्र, वातावरण, संस्कार एवं शिक्षा के आधार पर अपना जीवन-दर्शन निर्धारित करता है एवं उसे चित्रित करता है। इन्हीं आधारभूत तथ्यों के कारण उसकी भाषा के चयन, प्रस्तुतीकरण एवं व्यंजना प्रणाली में जो नावीन्य और मौलिकता का समावेश होता है, उसे ही शैली कहा गया है। लेखक में भावाभिव्यक्ति की शक्ति प्राय: निसर्ग प्रदत्त हुआ करती है तथापि साहित्यकार स्वयं सुसंस्कृत व सुशिक्षित होकर अपनी इस शक्ति को विकसित भी कर सकता है।"भाव,विचार और कल्पना तो इसमें नैसर्गिक अवस्था में वर्तमान रहती हैं। और साथ ही उन्हें व्यक्त करने की स्वाभाविक शक्ति भी इसमें रहती है। अब यदि उस शक्ति को बढ़ाकर संस्कृत और उन्नत करके हम उसका उपयोग कर सकें तो उन भावों, विचारों और कल्पनाओं के द्वारा हम संसार के ज्ञान भण्डार की वृद्धि करके उसका बहुत कुछ उपकार कर सकते हैं।"[2]

भाषा के ही समान शैली में स्पष्टता,सरलता, सजीवता,रोचकता,स्वाभाविकता आदि गुण अपेक्षित हैं। इनके अतिरिक्त यथा अवसर माधुर्य ओज गाम्भीर्य आदि का प्रवाहपूर्ण एवं प्रभावयुक्त उपयोग रचनाकार की विशिष्ट शैली को गरिमा प्रदान करता है। वाक्य-रचना में सुसंगठन,धारा-प्रवाहिकता, रोचकता एवं व्यंजकता अनिवार्य है, इसके अभाव में भाषा शैली का प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है और सुन्दर से सुन्दर कथा का प्रभाव विनष्ट हो सकता है।

---

1- अरस्तू का 'काव्य शास्त्र' - पृ०

2- साहित्यालोचन- डा० श्यामसुन्दरदास-पृष्ठ-

शैली अधिकाधिक स्वाभाविकता एवं रोचकता प्रदान करने के लिए आवश्यक है कि रचनाकार वातावरण एवं पात्र की मानसिक अवस्था के अनुकूल भाषा का प्रयोग करे। विशेष कर उपन्यासों में समग्र वातावरण एवं पात्रों के मनोगत भावों की यथार्थ सृष्टि के लिए पात्रानुकूल भाषा-शैली की अनिवार्यता असंदिग्ध है। काव्य शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान का कथन है -' पात्र की शिक्षा, संस्कृति और मानसिक धरातल के अनुरूप ही उसकी भाषा होनी चाहिए। इसके लिए पाण्डित्यपूर्ण, व्यंग्ययुक्त भाषा से लेकर ठेठ प्रादेशिक और ग्राम्य भाषा तक का प्रयोग यथावश्यक रूप में किया जाता है।'[1] इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यद्यपि कुछ विद्वान उपन्यासों में जन प्रचलित भाषा के ही युक्तिसंगत प्रयोग को ही उपन्यासकार की भाषा की कसौटी मानते हैं तथापि यह तथ्य निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जा सकता है कि उपन्यासकार भाषा को वातावरण और पात्र के अनुकूल बनाने के लिए भाषा के विभिन्न प्रचलित और अल्प प्रचलित रूपों को अपने उपन्यास में स्थान दे सकता है। हिन्दी साहित्य के विभिन्न उपन्यासकारों ने भी अपने उपन्यासों में साहित्यिक हिन्दी, अरबी फारसी से युक्त उर्दू मिश्रित हिन्दी, जन सामान्य में प्रचलित मुहावरों और कहावतों से युक्त सरल हिन्दी तथा हिन्दी की विभिन्न बोलियों का यथास्थान उपयोग करके अपनी भाषा-शैली में वैविध्य और स्वाभाविकता लाने की चेष्टा की है। वर्मा जी भी हिन्दी उपन्यास-जगत के ऐसे सफल कथाकार हैं जिन्होंने अपने उपन्यासों में हिन्दी के लोक-प्रिय स्वरूप को अपनाकर अपने पाठकों को मुग्ध कर लिया है। इस अध्याय में हम वर्मा जी की भाषा और शैली की क्रमशः व्याख्या करेंगे।

<u>वर्मा जी की भाषा</u> :- वर्मा जी के उपन्यासों में सामान्यतः खड़ी बोली का सर्व प्रचलित रूप दीख पड़ता है। किन्तु भाषा के सम्बंध में उनका कोई पूर्वाग्रह कहीं भी दृष्टिगत नहीं होता, उपन्यास के विषय, पात्र के मानसिक धरातल और भाव के अनुकूल भाषा को विविध रंग देने में, वर्मा जी को किसी संकोच का अनुभव होता हो, ऐसा उनके उपन्यासों के अध्ययन से प्रतीत नहीं होता। खड़ी बोली का आधार होते हुए भी वर्मा जी ने यथास्थान हिन्दी की स्थानीय बोलियों, अंग्रेजी और अरबी फारसी के शब्दों का प्रयोग इस प्रकार किया है कि वह अभिव्यक्ति की अपार शक्ति को प्रदर्शित करते हुए कथ्य में प्रवाह भर देते हैं। वर्माजी

---

1- काव्यशास्त्र- डा० भगीरथ मिश्र- पृष्ठ-95

टिप्पणी :- 'बाइंडिंग' में पृष्ठ ४२५ के पहले ४२६ लग गया है, अतः ४२४ पृष्ठ के आगे वाले पृष्ठ को छोड़कर संशोधित पृष्ठ ४२५ पर देखिए। तदुपरांत संशोधित पृष्ठ ४२६ देखने का कष्ट करें।

यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है कि वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में प्रकृति चित्रण और रूप वर्णन करते समय या गम्भीर विचार व्यक्त करते समय अधिकांशत: संस्कृत निष्ठ अलंकारिक भाषा का प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

प्रकृति-चित्रण :- "सौरभ से भरा मधुमास था, कम्पन से भरा मलय था, चाँदनी हँस रही थी, तारकावलि मुसकरा रही थी। निर्जन प्रदेश में और रात्रि के गहरे सन्नाटे में योगी कुमारगिरि के सामने नर्तकी चित्रलेखा खड़ी थी।"[1]

रूपवर्णन :- "चित्रलेखा का यौवन, उन्माद का प्रतिबिम्ब था। उसके अरुण कपोलों पर लाली थी। उसके अधर मन्द मुस्कान के पराग से भीगे हुए थे।"[2]

विचारों की अभिव्यक्ति :- "हमारे समस्त वर्णाश्रम धर्म की परम्परा ही है उत्पीड़न और शोषण। दूसरों के श्रम पर जीवित रहना। इस वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था ब्राह्मणों ने दी थी और उसी वर्णाश्रम धर्म के कारण हमारा देश अत्यन्त पिछड़ा हुआ, विकृतियों से ग्रस्त हो गया है।"[3]

इसी प्रकार के जाने कितने उद्धरण 'चित्रलेखा' के अतिरिक्त 'टेढ़े मेढ़े रास्ते', 'भूले बिसरे चित्र', 'सामर्थ्य और सीमा', 'रेखा', सीधी सच्ची बातें, तथा प्रश्न और मरीचिका' उपन्यासों से प्रस्तुत किये जा सकते हैं। इन उपन्यासों में जहाँ कहीं पात्रों के माध्यम से अथवा प्रत्यक्ष रूप से वर्मा जी का विचारक रूप उद्भासित हुआ है, वहाँ भाषा में संस्कृत के शब्दों का समावेश प्राय: दृष्टिगत होता है।

अरबी फारसी के शब्द :- वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में अरबी-फारसी के शब्दों का प्रचुरता के साथ प्रयोग किया है। पात्रानुकूल भाषा के प्रयोग के अनुसार उनके उपन्यासों के मुस्लिम पात्रों की भाषा अरबी, फारसी मिश्रित होती ही है, इसके अतिरिक्त स्वयं वर्मा जी के ऊपर स्थानीय प्रभाव होने के कारण उनके उपन्यासों में सामान्यत: संस्कृत निष्ठ भाषा का इतना आग्रह नहीं दिखता, जितना अरबी फारसी के जन-प्रचलित शब्दों से युक्त

---

1- चित्रलेखा- पृ० 45

2- ,, पृ० 23

3- प्रश्न और मरीचिका पृष्ठ 429

का प्रमुख उद्देश्य कथा कहने का होता है, भाषा उसमें कोई बाधा उत्पन्न नहीं करती वरन् कथा को सरस और स्वाभाविक बनाने में वैविध्यपूर्ण भाषा अपना सम्पूर्ण सहयोग प्रदान करती है, भले ही साहित्य- समीक्षकों की दृष्टि उसमें कहीं अनौचित्य की शोध कर ले। यहाँ हम उनके उपन्यासों में प्राप्त शब्द भण्डार, मुहावरों, लोकोक्तियों, सूक्तियों आदि पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

संस्कृत के शब्द :- वर्मा जी के लगभग सभी उपन्यासों में संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों का प्रयोग किसी न किसी रूप में मिलता है किन्तु उनके बहुचर्चित उपन्यास 'चित्रलेखा' में विषय और युग के अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करने के लिए विशेष रूप से संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग किया गया है। एक उद्धरण द्रष्टव्य है -

'महायज्ञ के अभिमन्त्रित धूम्र से सुवासित राज-प्रासाद के विशाल प्रांगण में सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के अतिथि आसीन थे। रत्नजटित स्वर्ण के राज-सिंहासन पर महाराज विराजमान थे। और उनका मुख पूर्व की ओर था। उनके दक्षिण ओर क्रम से यथायोग्य विशाल साम्राज्य के आमंत्रित सामन्त बैठे थे और वाम पार्श्व में राज्य के प्रधान कर्मचारी। सामने कर्मकाण्डी ब्राह्मणों तथा स्त्रियों का जमघट था।'[1]

प्रस्तुत उपन्यास में मौर्यकालीन वातावरण उपस्थित करने के लिए सामान्यत: अप्रचलित शब्दों का प्रयोग वर्मा जी ने किया है। इनमें स्थान, व्यक्ति तथा वस्तुओं के प्राचीनता द्योतक नामों को विशेष रूप से लिया जा सकता है जिनका प्रचलन आजकल प्राय: नहीं होता है। यथा - राजप्रासाद,(पृ034) प्रांगण(34), श्रृंगार-गृह(37) सभा-मण्डल (37) केलिभवन(9) अतिथि भवन(54), भोजन गृह(74), अध्ययन-गृह(59), प्रहरी(61), परिचारिका(61), स्वर्ण-पात्र(23), देवि(23), आर्यश्रेष्ठ(68) आदि। इनके अतिरिक्त 'चित्रलेखा' के अधिकांश पात्रों के नाम यथा- मृत्युंजय, श्वेतांक, विशालदेव, कुमारगिरि, बीजगुप्त, चित्रलेखा, विश्वपति, मधुपाल, कृष्णादित्य आदि संस्कृताधारित होने के कारण विशिष्ट वातावरण के निर्माण में सहायक हुए हैं। अन्य उपन्यासों में वातावरण-निर्माण के लिए अद्यतन समाज में प्रचलित जनसामान्य की भाषा का प्रयोग किया है।

---

1- चित्रलेखा- पृष्ठ 35

~~टिप्पणी:- 'बाइंडिंग' में पृष्ठ 425 के पहले 426 लग गया है, अतः 424 पृष्ठ के आगे वाले पृष्ठ को छोड़कर संशोधित पृष्ठ 425 पर देखिए। तदुपरांत संशोधित 426 देखने का कष्ट करें।~~

सरल हिन्दी के प्रति उनका झुकाव दृष्टिगत होता है। भाषा की इस सरल प्रवृत्ति के कारण 'चित्रलेखा' जैसे उपन्यास में सुसंस्कृत भाषा के बीच भी कहीं-कहीं इमारत(अरबी, चि०पृ०56) मशाल और शीशो(अरबी-पृ०115) शराबी,(अरबी शब्द शराब में हिन्दी का 'ई' प्रत्यय लगाकर बना शब्द पृ० 48) जादू(फारसी पृ० 24) जैसे शब्द दिख जाते हैं। जहाँ तक उनके मुसलमान पात्रों के संवाद की भाषा में अरबी फारसी के शब्दों का प्रश्न है, वर्मा जी ने अधिकांशत: ऐसे शब्दों का प्रयोग ही समीचीन समझा है जो सम्प्रति हिन्दी में इस भाँति मिल गये हैं कि सामान्य पाठक की समझ से बाहर न होकर वह उपन्यास में स्वाभाविकता ला देते हैं। उनके कारण दुरूहता नहीं आ पाई है। अरबी-फारसी के शब्दों से युक्त भाषा के कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं -

'मैंने वज़ीर साहब- ऐसे काबिल शख्स के हाथ में मुल्क का इंतज़ाम सुपुर्द कर दिया है। - (पतन- पृ० 24)

'मैं जिन्दगी भर तुम्हारा एहसान मंद रहूँगा'। (पतन-पृ० 122)

'मेरे लिए इन बेगुनाहों का खून बहाने से कोई फायदा नहीं।' (पतन 183)

लेकिन बदकिस्मत हूँ कि दुनिया की ठोकरें खा रहा हूँ।' अपने खिलौने-पृ०132)

'मज़हब का कुदरती गुन है फैलना' (भूले बिसरे चित्र-41)

'आकबत तक जमीन के अन्दर मिट्टी में दफन होकर रहना पड़ेगा'(भूले बिसरे चित्र-पृ० 324)

'यह सियासी ज़िन्दगी भी कुछ अजीब होती है।(भूले बिसरे चित्र-450)

'आप फिर न कहिएगा कि मैंने खामख्वाह आपकी मुखालफ़त की है।'(सामर्थ्य-और सीमा- पृष्ठ 176)

'गो कि शरीअत के मुताबिक मुझे पीना कतई नहीं चाहिए।'(सीधी सच्ची बातें-पृष्ठ 82)

'तुम इसे कम्सखुन कह सकते हो।' (सीधी सच्ची बातें-पृष्ठ 90)

'अज़ीजमन! बड़े जहीन हो। तुम्हें तो सियासत में जाना चाहिए।'(प्रश्न और मरीचिका-पृष्ठ 111)

'कपड़े पहनकर तो मज़हब नहीं बदल जाता।' (प्रश्न और मरीचिका-पृ० 73)

इन वाक्यों के अतिरिक्त अरबी-फारसी की शब्दावली के कुछ नमूने भी देखने योग्य हैं पतन - फुरसत(22) वज़ीर, मुसाहिब, सल्तनत(33) पखाना, बेइज़्ज़ती(24)तहज़ीब, तालीम(28) मुबारक(30) भूले बिसरे चित्र- कहर, कामयाबी(324)खुदावन्द, हज़रत, आलिम,

दीन-दयानतदार, नियाज़,(325) यक़ीन,बदनीयती,क़सूरवार,खिलाफत(451) मज़हबी तास्सुब(454) तरमीम(106) अपने खिलौने- मक्ता(69), कुफ्र हकीकी और इश्क मिजाजी(70) मुकर्रर, फ़तह,निसार(157) सामर्थ्य और सीमा- बगावत, खुल्लमखुल्ला, रहनुमा(112) इत्तिला, फ़िसाद काबिज(121) हिफ़ाजत, बदमज़गी, इत्मीनान,मौजूदगी (123) दस्तन्दाज़ी(126) इस्तीफ़ा,खामख्वाह, मुखालफ़त(176) तक़रीर, तहकि,हुकूक, बाज़ुओं, कुव्वत(284) सीधी सच्ची बातें - नज़रिया,इंसानियत, मुनाफ़ा,दलील(84) मुरीद,रकीब मेहनतकश(89) नज़ारा,अहम्यित, जिस्म, वतन, फ़ाकाकशी,नफासत,ऐशोआराम इफरात(91) तयशुदा, गैरमुमकिन(93) बुतपरस्त, बुतशिकन(135) मरासिम(136) तालिब-इल्मों, सरमायदारी(630) निफ़ाक(651) प्रश्न और मरीचिका - वाकिफ, बरगला(83) पनाह, निहायत, शोहदा, फिरकेवाराना, रूख, तर्क, जाती, सख्त, निगरानी,(84) इसरार, अर्ज, तबका, फरेब,मक्र(85) लाहौल,निहायत ज़ालिम(86) तनहाई,किस्मत,मिन्नत, बख्शीश, सुकून, परवरदिगार दोजख(87) इत्यादि । इस प्रकार के सैकड़ों शब्द वर्मा जी के उपन्यासों में भरे पड़े हैं ।

इन थोड़े से उदाहरणों से वर्मा जी के उपन्यासों में अरबी-फारसी के शब्दों के बहुत प्रयोग का अनुमान लगाया जा सकता है । उपर्युक्त उद्धरण वर्मा जी के उपन्यासों में आगत मुस्लिम पात्रों के कथनों से लिए गये हैं । मुस्लिम पात्रों के अतिरिक्त कुछ ऐसे पात्र जो भाषा के सम्बंध में अधिक आग्रहशील नहीं हैं, मुस्लिम पात्रों से वार्तालाप करते समय अरबी-फारसी मिश्रित भाषा का प्रयोग करते दृष्टिगोचर होते हैं । इस प्रसंग में 'नबाब वाज़िद अलीशाह और राजा श्यामसिंह वार्तालाप'[1] 'मीर साहिब और ज्वालाप्रसाद वार्तालाप,'[2] 'फरहतुल्ला और ज्ञानप्रकाश वार्तालाप,'[3] 'अलीरज़ा-गंगाप्रसाद वार्तालाप,'[4] 'मौलाना-रियाजुलहक़ और जोखनलाल का वार्तालाप'[5] और मौलाना रियाजुलहक़ -शिवानंद शर्मा का वार्तालाप[6] विशेष रूप से ध्यातव्य हैं ।

---

1- पतन- पृष्ठ-23,24,30,33,34,35
2- भूले बिसरे चित्र-पृष्ठ-73,74,106,107,108,109
3- ,, ,, पृष्ठ- 450-451
4- ,, ,, पृष्ठ- 454,से 462 तक ।
5- सामर्थ्य और सीमा- पृष्ठ-175,176
6- ,, ,, पृष्ठ-284,285

इसी संदर्भ में एक बात का उल्लेख कर देना भी समीचीन प्रतीत होता है कि उत्तर-प्रदेश में कायस्थ जाति के लोगों पर मुसलमानों के विशिष सम्पर्क के कारण उनकी भाषा का इतना अधिक प्रभाव रहा है कि उनकी रोजमर्रा की भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों का अत्यधिक प्रयोग मिलता है। इसी तथ्य को दृष्टि में रखकर वर्मा जी ने अपने कायस्थ जाति के पात्रों के द्वारा विशिषरूप से अरबी-फारसी मिश्रित भाषा बुलवायी है। 'भूले बिसरे चित्र' में मुंशी शिवलाल, उनके भाई राधेलाल ज्वालाप्रसाद तथा गंगाप्रसाद की भाषा 'उर्दू' के समीप पहुँच जाती है। यहाँ तक कि अल्पशिक्षित राधेलाल जब अपने भतीजे ज्वालाप्रसाद के नायब तहसीलदार होने की खबर का आनन्द अपने पड़ोसियों के बीच ले रहे थे उस समय अपनी आदत से मजबूर होने के कारण क्षेत्रीय भाषा के साथ भी अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग कर बैठते हैं -

'समझ का राखे हो हम लोगन केर खानदान का। गदर के पहले देखतेव हम लोगन केर ठाठ-बाट। तवारिख० मां लिखा है कि हम लोगन केर आला खानदान के बल पर नवाबी चलत रही। तौन कलट्टर साहब सब-कुछ जानत आंय। देखेव न, बिना पूछे-ताछे कैसे पट्ट दे ज्वाला का नायब तहसीलदारी पर नामजद कर दीन्हिन।'[1]

राधेलाल की इस भाषा से उत्तर-प्रदेश के एक ~~वर्ग~~ वर्ग विशेष की भाषा वर्मा जी ने प्रस्तुत कर दी है। इसी प्रकार मुस्लिम शासकों के समय से ही उत्तर-प्रदेश में कचहरियों में सामान्यत: अरबी-फारसी मिश्रित उर्दू भाषा का प्रयोग होता चला आया है। मुंशी शिवलाल द्वारा लिखित इस्तगासा इसका प्रमाण प्रस्तुत कर देता है -

'मन कि भूपसिंह, वल्द अनूपसिंह, उम्र तख़मीनन पच्चीस साल, क़ौम ठाकुर, पेशा काश्तकारी, साकिन हाट बिशनपुर, तहसील फ़तहपुर, ज़िला फ़तहपुर, कल बरोज़ बुधवार तारीख 4 जुलाई, सन् 1885 तहसील गंज की बाज़ार में गल्ला फ़रोख्त करने गया था। बवक्त वापसी बाज़ार से फ़िदवी मुसम्मी भैकूलाल, वल्द जोखूलाल, उम्र तख़मीनन अट्ठाईस साल, क़ौम बक्काल, पेशा सूदखोरी, साकिन गंज के मकान के सामने से तनहा गुज़र रहा था--------------।'[2]

---

1- भूले ~~बिसे~~ बिसरे चित्र- पृष्ठ-8

2- द्रष्टव्य है - भूले बिसरे चित्र-पृष्ठ-1,2,3 पर लिखे ~~महत्वपूर्ण~~ सम्पूर्ण इस्तगासे की भाषा

विभिन्न धर्म और जाति के लोगों के मुख से अरबी-फारसी के शब्दों से युक्त भाषा का प्रयोग करवाकर वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में जो स्वाभाविकता ला दी है, वह उनके उपन्यासों की अपनी विशिष्ट उपलब्धि है। विभिन्न पात्रों के वार्तालाप की भाषा मुस्लिम समाज में व्यवहृत शिष्टाचार की भाषा को उपस्थित करने में विशेष सफल हुई है। कुछ उद्धरण देख लेना समीचीन प्रतीत होता है -

'हुज़ूर, गुस्ताख़ी मुआफ़ हो, तो कुछ अर्ज़ करूं।' (पतन-पृ० 23)
'वैसे मैं कभी नहीं पीता, लेकिन हुज़ूर के हुक्म से सरताबी मुमकिन नहीं।' पृ०
(पतन-पृष्ठ-29)
'क्या आपका दौलतख़ाना यही है?'-----------(पतन-पृष्ठ-37)
'जी हाँ, ख़ाकसार का ग़रीबख़ाना यही है।' (पतन-पृष्ठ-37)
'हुज़ूर का नमक खाता हूँ। अगर हुज़ूर इजाज़त दें तो ख़ाकसार हुज़ूर को कुछ सलाह दे सकता है।'--------(अपने खिलौने-पृष्ठ-114)
'और आपने जो मेहरबानी फरमाई है उसके लिए बहुत-बहुत शुक्रिया।'
(प्रश्न और मरीचिका-पृष्ठ 85)

अरबी-फारसी के विभिन्न शब्दों के अतिरिक्त वर्मा जी ने 'अपने खिलौने' उपन्यास में 'उर्दू-~~फारसी~~ शायरी के द्वारा दिलवर किशन जख्मी के शायर रूप की स्वाभाविकता को उजागर किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में अवसरानुकूल अरबी-फारसी के शब्दों का उचित प्रयोग किया है।

अंग्रेजी के शब्द :- संस्कृत, अरबी-फारसी की ही भाँति वर्मा जी के उपन्यासों में अंग्रेजी के शब्द भी प्रचुरता के साथ प्रयुक्त हुए हुए हैं। जैसी कि सामान्य प्रवृत्ति आज भारतवर्ष में पायी जाती है, थोड़े पढ़े-लिखे लोगों में भी अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग एक फैशन के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। युवा-वर्ग में अंग्रेजी शब्दावली का प्रयोग इस सीमा तक बढ़ गया है कि उनका कोई वाक्य अंग्रेजी के शब्द के बिना सुन पाना मुश्किल है। इसके अतिरिक्त भारत की पराधीनता के काल से चले आ रहे अंग्रेजी पारिभाषिक शब्द हिन्दी में इस प्रकार घुलमिल गये हैं कि उनका हिन्दी-शब्द सहसा दिमाग में आता ही नहीं। इन्हीं तथ्यों को दृष्टि में रखकर वर्मा जी ने अंग्रेजी के शब्दों का निःसंकोच प्रयोग अपने उपन्यासों में किया है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

तीन वर्ष :- स्पेशल क्लास, कोच, सिल्क,सूट(41) स्टूडेन्ट, इन्टरमीडिएट,फर्स्ट, क्लासफेलो(34) ड्राइंग रूप(35) एक्टिंग(37) यूनिवर्सिटी,सिनेमा(43) टेढे मेढ़े रास्ते- गैरेज, मैनेजर(35), ब्रिटिश गवर्नमेन्ट,डिप्टी कमिश्नर(45) चीफ कोर्ट(47), सुपरिन्टेन्डेन्ट(54) स्पीड(60) ने स्टियरिंग व्हील(90) कम्यूनिज़्म(437) ड्राइवर(489) भूले बिसरे चित्र- डोमिनियन स्टेट्स(398)प्रेक्टिस, कम्पार्टमेण्ट, फर्स्टक्लास(255)क्रिकेट-गेम आफ चांस(254) डिस्ट्रिक्ट जज(422) मूवमेण्ट(475) सिविलियन्स(406) मीटिंग(456) सामर्थ्य और सीमा- नानवेजीटेरियन(139) इन्डस्ट्रियल रिवोल्यूशन(237) ईस्ट इण्डियन रेलवे, गार्ड(37) सेक्रेटरी(50) इन्जीनियर(63) मिनिस्टर,प्लेन(81) डेलीगेशन, इंचार्ज(293) टू नेशन्स-थ्योरी (285) अपने खिलौने- मैनेजिंग डाइरेक्टर कांटीनेंट(22) काउन्टर(23) रिकार्ड, बुश-शर्ट, रिस्टवाच, फ्रेम(141)ट्रेन, टाइमटेबल, एक्सप्रेस (173) सीरियस केस(172) रेखा- ड्रेसिंग - टेबल, क्लास, मिनट,हीरोइन,फिल्म,होस्टल(8) प्रीवियस, फाइनल,मार्कशीट(9) टैक्सी, प्रोफेसर, सूटकेस, वेस्ट पेपर बास्केट(18) लेक्चरर, स्टडीरूम, थीसिज़, रजिस्टर(27) इम्प्रेशन(145) ऑफर, फोन(333) सीधी सच्ची बातें - अल्टीमेटम(62) टेण्ट(63) प्लान(81) यूनियन,नोटिस(80) ट्रक,स्टेशन(96) एपाइंटमेण्ट, इण्टरव्यू, लेक्चररशिप लॉ, जिनिंग फैक्टरी, प्रोनोट(546) चेयरमैन, रिप्रेजेण्टेशन, हेड ऑफ डिपार्टमेन्ट,सॉलीसिटर, पार्ट-टाइम,ज्वाइन,सबहिं नचावत राम गोसाईं - एक्वायर, सोशलिस्ट, कैबिनेट-डिसीशन, टर्म्स,अटानोमस बॉडी, यूनाइटेड नेशंस,मिनिस्टरी(182) माई डियर, लेफ्टिज़्म, मेम्बर, रिइन्स्टेट,पोर्टफोलियो(264) रिपब्लिकन पार्टी, कार्ड(265) रिसीवर, कान्स्टीटूएंसी, कैनवेसिंग, रिसीवर(277) पार्लमिण्टरी बोर्ड, नामीनेशन फाइल(278) प्रश्न और - मरीचिका - ज्वाइन्ट सेक्रेटरी, सेक्रेटेरियट(55) रिवाल्वर, लाइसेन्स(69)अमेरिकन इम्बेसी, एयरपोर्ट, रनवे(119) परमिट, वाइस प्रेसीडेण्ट,प्लेन(127) प्राइम मिनिस्टर, पालिटिकल-कारेसपाण्डेंट(131) सीट, टाइप, सीरीज़, एक्सलेण्ट,प्रेसक्लब, सिटिंग-रूम,राइट-अप(278) इत्यादि ।

वर्मा जी के उपन्यासों में प्रयुक्त हजारों अंग्रेजी शब्दों में से कुछ ही ऊपर दिए गये हैं। उपर्युक्त शब्दों के सम्बंध में यह बात निःसंकोच कही जा सकती है कि ये आजकल के पढ़े-लिखे समाज में अपरिचित तो नहीं ही हैं वरन् ऐसे ही जाने कितने शब्द हमारी जबान पर इस तरह चढ़ गये हैं कि उन्हें हिन्दी से अलग करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती ।

वर्मा जी ने अंग्रेजी के जिन शब्दों का ~~प्रकार~~ प्रयोग किया है वह उनके उपन्यासों की भाषा से कटकर अलग-थलग प्रतीत नहीं होते। उदाहरणस्वरूप उन्होंने अंग्रेजी शब्दों का बहुवचन बनाते समय प्राय: हिन्दी व्याकरण के नियमों का ही प्रयोग किया है। कुछ शब्द देखिए - क्लर्कों (टेढ़े मेढ़े रास्ते-पृ० 59) मशीनें(सामर्थ्य और सीमा-237), नर्सों(रेखा-327) ट्रेनों(सीधी सच्ची बातें-38) एजंसियां (प्रश्न और मरीचिका-121) आदि।

प्राय: ऐसा देखा जाता है कि कुछ लेखक शुद्ध भाषा के प्रयोग की भावना से ग्रस्त होकर भाषा को कृत्रिम बना देते हैं। वर्मा जी ने भाषा की शुद्धता के लिए ऐसा प्रयास किया हो, ऐसा कहीं भी दिखता नहीं है। पात्र की शैक्षणिक स्थिति और सामाजिक स्तर के अनुकूल तो उन्होंने भाषा को इतना लचीलापन प्रदान किया है कि उसका रूप एकदम बदला हुआ प्रतीत होता है। 'सीधी सच्ची बातें' का परवेज बम्बई में रहनेवाला एक पारसी नवयुवक है, उसकी हिन्दी 'बम्बईया हिन्दी' का पुट तो लिए ही है, कुछ पढ़ा-लिखा होने के कारण उसमें अंग्रेजी शब्दों का बाहुल्य अनौचित्यपूर्ण नहीं दिखता -

'मिस्टर जगतप्रकाश! कलकत्ता से बागची आर्ट सेंटर का एक ट्रुप आया है। आज देसाई हाल में उसका एक शो है। डांस, म्यूजिक और भी न जाने क्या-क्या? आज वहाँ चला जाए तो कैसा रहे? सुना है बंगाली लोग बड़ा आर्टिस्ट होता है, वैसे अपुन को इस आर्ट-फार्ट की कोई जानकारी नहीं, लेकिन बड़ी तारीफ़ है। सुना है सब आर्टिस्ट शान्ति निकेतन में तालीम पाया है।'[1]

पात्रों के परस्पर वार्तालाप में तो अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हुआ ही है, स्वयं अपनी तरफ से टिप्पणी देते हुए उपन्यासकार ने अंग्रेजी-शब्दों से बचने का कोई प्रयास नहीं किया है। इसमें भी नितांत सहजता प्रतीत होती है, भाषा में किसी प्रकार का दुराव-छिपाव या अपनी विद्वता आरोपित करने का प्रयास नहीं दिखता। एक उद्धरण द्रष्टव्य है -

चाय से भरे हुए टी-पाट में मिल्क जग का दूध उड़ेलकर और शुगर बेसिन की ~~की~~ चीनी डालकर लीला ने टी-पाट अजित के सामने रख दिया।'[2]

---

1- सीधी सच्ची बातें- पृष्ठ-55।

2- ~~टेढ़े मेढ़े रास्ते~~ तीन वर्ष पृष्ठ-8।

वर्मा जी के उपन्यासों में प्रयुक्त अंग्रेजी-शब्दावली को देखकर यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि वर्मा जी ने अधिकांशत: जनसामान्य में प्रचलित अंग्रेजी-शब्दों का ही प्रयोग किया है। जहाँ कहीं उन्हें कोई शब्द कुछ कठिन या अप्रचलित प्रतीत हुआ है वहाँ उन्होंने उसका हिन्दी-शब्द प्रकोष्ठ में दे दिया है ताकि पाठक को उस शब्द के कारण असुविधा न उठानी पड़े। कुछ उदाहरण देखिए - प्रोलीटेरिएट(जनसाधारण) टेढ़े मेढ़े रास्ते, पृष्ठ 99), एक्सप्लाइटेशन(शोषण) भूले बिसरे चित्र, पृ० 55।) यूनीवर्सल ब्रदरहुड(सार्वभौमिक भ्रातृत्व) भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ-55।), ड्रंकेन ब्राल(नशेवाली मारपीट) प्रश्न और मरीचिका, पृष्ठ-118) इत्यादि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में अरबी-फारसी व अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषाओं और संस्कृत के शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है। भाषा की शुद्धता की दृष्टि से यह दोषपूर्ण हो सकता है किन्तु उपन्यास में सहज-सरल भाषा के प्रयोग की दृष्टि से वर्मा जी के उपन्यासों में संस्कृत के शब्दों के प्रयोग के कारण न क्लिष्टता आने पायी है और न ही अंग्रेजी, अरबी-फारसी के कारण कृत्रिमता ही आई है। अपितु इनके प्रयोग से भावाभिव्यक्ति में जो सामर्थ्य और प्रवाह आया है, उसमें पाठक बहता ही चला जाता है ; वर्मा जी के उपन्यासों को पढ़ते समय भाषा कहीं बाधक नहीं सिद्ध होती वरन् भावों के समझने में एक सशक्त साधन बनकर ही प्रस्तुत होती है।

<u>क्षेत्रीय बोलियों का प्रयोग :-</u> अंग्रेजी, अरबी-फारसी और संस्कृत के शब्दों के अतिरिक्त वर्मा जी ने भाषा को पात्रों के अनुकूल बनाने के लिए उत्तरप्रदेश के मध्यवर्ती क्षेत्र में बोली जानेवाली बोली का भी यथास्थान प्रयोग किया है। यह अवधी का ही एक रूप है और प्रतापगढ़ ज़िले से पश्चिम की ओर बोली जाती है। `टेढ़े मेढ़े रास्ते` के झगड्डू मिसिर तथा उनके गांव के अन्य लोग, `भूले बिसरे चित्र` के घसीटे, छिनकी, भीखू तथा मुंशी-शिवलाल के घर की स्त्रियाँ, `सीधी सच्ची बातें` का सुमेर प्राय: इसी बोली में बात करते हैं। इनके अतिरिक्त `सबहिं नचावत राम गोसाईं` में राजा पृथ्वीपालसिंह और पंडित कमलनयन त्रिपाठी के वार्तालाप में भी क्षेत्रीय भाषा का प्रयोग हुआ है। छिनकी की भाषा का एक उदाहरण देखिए -

"बाजार से मँगइहैं छोटी, उनकेर मुँह आय ? जबरदस्ती हमसे भण्डार-घर की चाबी छीन लीन्हिन ( फतेहपुर के घर की मालकिन तो रहें ही, यहूँ आयके मालकिन बन बैठीं। बेदरदी के साथ खरच होई। ज्वाला बिचरऊ पिसके कमइहैं और ई सण्ड-मुसण्ड चचेरे भाई

हुमक के खइहैं ।"[1]

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि क्षेत्रीय भाषा के कारण पात्र के ग्राम्य होने का परिचय तो मिलता ही है, साथ ही पात्र के क्रोध,आवेश,आत्मीयता और घृणा के भावों का भी अत्यंत सफल प्रकटीकरण हो गया है । इसी प्रकार वर्मा जी ने पारिवारिक परिकरों, घरेलू स्त्रियों के कथोपकथन में स्थानीय बोली का प्रयोग करके स्वाभाविकता और आत्मीयता का वातावरण उपस्थित करने का सफल प्रयास किया है । इतना ही नहीं उन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों के सम्पर्क में रहनेवाले जमींदारों और ताल्लुकेदारों को भी कभी भावावेश में अथवा अत्यंत आत्मीय क्षणों में अवधी बोलते हुए प्रस्तुत किया है । उदाहरण स्वरूप बरजोरसिंह अपने बहनोई के समधी की प्रशंसा करते हुए भावावेश में अवधी का प्रयोग करके अपने मन की समस्त भावनाएँ उँडेल देता है - " का कहें का है जीजा । राजा साहेब मनई न आँय, देवता आँय देवता । जीजा, हम तुमसे कहत हन कि राजा साहेब केर ऐस समधी पायके तुम धन्य हुई गएव ।"[2]

राजा पृथ्वीपालसिंह भी अपने जीवन की व्यक्तिगत समस्या की चर्चा करते हुए अवधी का प्रयोग ही करते हैं -"तिरपाठी जी, ऊ ससुरी सिलवनिया के गरम गरम रहिगा। के अब बताओ का कीन जाय ?"[3] - इसी प्रकार 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' के राम उदित भी उमंग के क्षणों में अवधी ही बोलते दिखते हैं ।"[4]

क्षेत्रीय भाषा के माधुर्य का सर्वाधिक सुन्दर निर्वाह छिनकी, भीखू और टेढ़े मेढ़े रास्ते ' के झगड्डू मिसिर की भाषा में हुआ है । जहाँ छिनकी और भीखू अपने शब्दों में स्नेह और सौहार्द्र भरकर अपने स्वामी और उनके परिवार के प्रति अपनी स्वामि-भक्ति प्रकट कर देते हैं वहीं झगड्डू मिसिर अपने परिवेश की गम्भीर समस्याओं को भी अपनी सरल भाषा में व्यक्त कर देते हैं - देखिए -"लेकिन एक बात आप निश्चय करि के समझ राखौ । यू सहर का जोश देस की स्वाधीनता की लड़ाई माँ काम न देई । शहरवाले लोग

---

1- भूले बिसरे चित्र- पृष्ठ-133

2- ,, ,, पृष्ठ-34

3- सबहिं नचावत राम गोसाईं- पृष्ठ-140

4- ,, ,, पृष्ठ- 128-129

देखत हैं तमाशा------देखतै नाहीं हैं, तमाशा करत हैं। उनका खाय-पियन की कमी तौ आय नहीं, पेट भरा है, मौज की जिन्दगी बितावत हैं। आज एक खेल से तबियत ऊबी, काल दूसर खेल रच दीन्हिन। तौन ई सब जोश जौ आप सहर माँ देखे रहे हौ, ईका हम लोग एक खेलै समझत आन जौ जादा दिन नहीं चलन का। वास्तविक काम तबहीं होई जब ई गाँववाले मनई अपने हाथ माँ लेहैं।'[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्मा जी ने जहाँ उचित समझा है, वहाँ अपने पात्रों के द्वारा अवधी के एक रूप बैसवाड़ी का प्रयोग करवाया है और उसका यथासम्भव उचित निर्वाह भी किया है, किन्तु कहीं-कहीं उनसे त्रुटियाँ भी रह गई हैं जिन्हें वह कुछ सतर्कता बरतने पर दूर कर सकते थे। किन्तु इस सतर्कता का अभाव कहीं-कहीं पाठक को खल जाता है। कुछ उद्धरण देख लेना समीचीन प्रतीत होता है -

'हाँ, पर ई से क्या ?'[2] यदि यहाँ क्या के स्थान पर 'का' होता तो अधिक उपयुक्त प्रतीत होता।

'हम सब जी तोड़ के मेहनत करता हन'[3] 'करता' के स्थान पर 'करत' होना चाहिए।

'तौ फिर ज्वाला के खाय-पियैं का कौन इन्तजाम होई ?'[4] और 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में 'तौन गाँधी बाबा हमारे खाय-पियन का प्रबन्ध कराय सकिहैं'[5] में 'खाय-पियैं तथा 'खाय-पियन' दोनों ही ठीक नहीं है। 'खाय-पिये' उचित प्रयोग है।

'सुना है तुम्हारी मामी लिखवाइन रहैं कि तुमहूँ का घाटमपुर साथ माँ भेज देंय, मुला तुम्हारे जाँय की कौनो तैयारी नाहीं दिखाई देत है।'[6] यहाँ 'तुम्हारी' के स्थान पर 'तुम्हरी' और 'तुम्हारे' की जगह 'तुम्हरे' का प्रयोग होना चाहिए।

---

1- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 284
2- ,, ,, पृ० ~~02~~ 344
3- ,, ,, पृ० 284
4- भूले बिसरे चित्र- पृ० 22
5- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 284
6- भूले बिसरे चित्र-पृ० 21

'आखिर विधा विटिया पर हमारो तो कौनो हक आय' यहाँ 'हमारो' न होकर 'हमरो' होना चाहिए ।

ऐसी ही छोटी-छोटी त्रुटियाँ अनेक स्थानों पर रह गयी हैं जिनकी ओर 'अवधी' से अपरिचित पाठक का तो ध्यान नहीं जाता, किन्तु उस क्षेत्र की बोली को जानने वाले इन त्रुटियों को तत्काल पकड़ सकते हैं ।

इस प्रसंग में एक बात और उल्लेखनीय है। वर्मा जी के उपन्यासों में अवधी बोलने वाले पात्र कभी-कभी एक ही स्थान पर खड़ी बोली और अवधी का प्रयोग एक साथ करते देखे जाते हैं । यों शहरी जीवन के सम्पर्क के कारण ऐसा होना असम्भव नहीं है, कई बार लोग शहर के लोगों से बात करते समय ऐसा कर सकते हैं किन्तु जब वर्मा जी ने अपने पात्रों से ऐसी 'खिचड़ी' भाषा बुलवायी है तो उससे भाषा के समग्र प्रभाव और प्रवाह में बाधा अवश्य पड़ी है । छिनकी, घसीटे और भीखू जैसे निम्नवर्गीय पात्रों की बोलचाल में इस प्रकार का मिश्रित रूप प्राय: कम ही दिखता है, फिर कुछ स्थलों पर उनकी क्षेत्रीय बोली में खड़ी बोली का पुट कुछ अखरता है, देखिए -

'तुम्हरे भोलेपन पर बलिहारी जाऊँ बहू । और नायब तहसीलदास बड़ा अफसर होता है, बस ऐसा समझो जैसे राजा होय । सैकड़न नौकर-चाकर, चीज-बस्तु० बस्त, जमा जथा । बस रानी-महारानी की तरह रहियो बहू ।'[2]

'बड़ी देर लगाय दीन्हिव बचवा । लाला राधाकिशन तुमका दुई दफा पूछ गए । अबहीं कुछ देर पहले अपनी भौजाई के साथ बाहर गये हैं । कहि गए हैं कि आधी रात के समै लौटिहैं ।'[3]

सांमतवर्गीय पात्रों की भाषा में तो इस प्रकार का मिश्रितरूप प्राय: दृष्टिगत होता है -

'फिर रामसजीवन कहता है कि वह मिमिया और परवरिस कीन्हिस है, जब हमने सजीवन को रूपया भेजना बन्द कर दिया था ।'[4]

---

1- भूले बिसरे चित्र- पृष्ठ-618

2- ,, ,, पृष्ठ- 11

3- ,, ,, पृष्ठ-266

4- सबहिं नचावत राम गोसाईं- पृष्ठ-118

' क्या कहा ? रामसजिवना मेम के साथ बियाह करके लखनऊ आवा है । उस चुड़ैल को झाड़ू मार के निकाल क्यों नहीं दिया ?'[1]

'वाह रे रिपुदमन, हम ही से बैर ठान लीन्हिस । कौन सी बात हो गई जो आठ साल हो गए, घर नहीं आया ।'[2]

कहने का तात्पर्य यह है कि एक ही समय एक ही संवाद में मिश्रित भाषा बोलना यों कोई दोष तो नहीं तथापि पढ़ते समय एक झटका-सा अवश्य लगता है, पाठक को वह भी तब जब वह यह सोचकर चलता है कि वह वर्मा जी जैसे भाषा के सिद्धस्त कलाकार की रचना पढ़ रहा है ।

वर्मा जी के उपन्यासों में प्रयुक्त विविध भाषाओं के शब्द-भण्डार का अवलोकन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनका शब्द भण्डार अत्यन्त विस्तृत है । विस्तृत शब्द-भण्डार से अनुकूल और उचित शब्दों का चयन वर्मा जी ने इस प्रकार किया है कि उसमें कृत्रिमता नहीं आने पाती और पाठक वर्मा जी की भाषा को अपनी नित्यप्रति की भाषा के अत्यंत निकट पाकर आत्मीयता का अनुभव करने लगता है । बहुरंगी भाषा के प्रयोग से जहाँ वर्मा जी ने भाषा के सरलकिन्तु आकर्षक रूप को प्रस्तुत किया है वहीं मुहावरे, कहावतों लोकोक्तियों आदि के सम्यक् प्रयोग के द्वारा उन्होंने भाषा में वक्रता, तीक्ष्णता और मार्मिकता लाने का सफल प्रयास किया है ।

<u>मुहावरों, कहावतों और सूक्तियों का प्रयोग :-</u> वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में मुहावरों, कहावतों और सूक्तियों का उपयोग इतनी कुशलता और सतर्कता से किया है कि उनसे भाषा की गरिमा वर्द्धमान हुई है । उनके उपन्यासों में भाषा की सटीकता, अर्थवत्ता और ध्वन्यात्मकता का एकमात्र कारण मुहावरों और कहावतों का समुचित प्रयोग है । वर्मा जी ने विषय की प्रकृति के अनुकूल लोकोक्तियों का प्रयोग किया है, भाषा की साज-सज्जा के लिए उन्हें बलात् ठूँसने का प्रयास वर्मा जी के उपन्यासों में कहीं दृष्टिगत नहीं होता । 'चित्रलेखा' के कालक्रम और गम्भीर विषय के कारण वर्मा जी ने इसमें मुहावरों और

---

1- सबहिं नचावत राम गोसाईं - पृष्ठ- 118

2- भूले बिसरे चित्र- पृष्ठ- 289

लोकोक्तियों का प्रयोग कम किया है, जबकि 'भूले बिसरे चित्र', और 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में सामाजिक जीवन को प्रतिबिंबित करने के लिए दैनिक जीवन में प्रयुक्त मुहावरों और लोकोक्तियों का खुलकर उपयोग किया गया है। 'चित्रलेखा' में प्रयुक्त कुछ मुहावरे द्रष्टव्य हैं -

'इतना कहकर तीर की भाँति वह वहाँ से चला गया।'[1]

'तुममें दर्शन के विकृत सिद्धान्तों ने जड़ जमा रखी है।'[2]

इसी प्रकार 'आश्चर्य' के भाव को व्यक्त करने के लिए मुहावरों का सटीक प्रयोग देखिए -

'मृत्युंजय मानो आसमान से नीचे गिरे।'[3]

'मृत्युंजय ने बीजगुप्त की ओर आँखें फाड़कर देखा।'[4]

वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में पात्रों के भावों को स्पष्ट करने के लिए मुहावरों की सहायता ली है। कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं -

'रामप्रकाश पर मानो घड़ों पानी पड़ गया।'[5]

'लक्ष्मीचन्द्र के माथे पर बल पड़ गये।'[6]

'ममरी चीख उठी, और केहरसिंह को जैसे काठ मार गया हो।'[7]

'गनेसी की आँखों में खून था।'[8]

'मकोला की बात में जोखनलाल [illegible] जहर के घूँट पी रहे थे।'[9]

'इस बातचीत में जोखनलाल का पारा काफी चढ़ गया था।'[10]

'सुषमा ने जगतप्रकाश की आँखों में अपनी आँखें गड़ा दीं।'[11]

---

1- चित्रलेखा- पृष्ठ-12
2- ,, पृष्ठ-47
3- ,, पृष्ठ-167
4- ,, पृष्ठ-167
5- अपने खिलौने-पृष्ठ-51
6- भूले बिसरे चित्र-पृष्ठ-383
7- सबहिं नचावत राम गोसाईं- पृष्ठ-75
8- ,, ,, पृष्ठ-75
9- सामर्थ्य और सीमा- पृष्ठ-118
10- ,, ,, पृष्ठ-160
11- सीधी सच्ची बातें - पृष्ठ-240

उपर्युक्त मुहावरों से पात्रों के भाव तो साकार हो ही गये हैं, भावों की अभिव्यक्ति के लिए वर्मा जी को विस्तृत विवेचन की आवश्यकता नहीं पड़ी है। इसी प्रकार पात्रों के अनुभव को प्रभावोत्पादक एवं लक्षणात्मक रीति से प्रस्तुत करने के लिए भी वर्मा जी ने मुहावरों का आश्रय लिया है। कुछ उदाहरण इसके प्रमाण हैं -

'अरे हाँ, यह तो ठीक बताया आपने। मेरे तो हाथ-पैर फूल गये थे।'[1]

'मैंने उसे अपने यहाँ ठहरने की दावत नहीं दी थी, जबरदस्ती वह हम लोगों के गले आ पड़ा।'[2]

'बाल बाल बचे। इस बनैले सुअर ने तो तुम्हारा काम तमाम ही कर दिया था।'[3]

'एक बिजली-सी कौंध गई सब लोगों की आँखों के सामने। अनुपम सौन्दर्य, मानो स्वर्ग से कोई अप्सरा उतर आई हो।'[4]

' बड़ी तुनुकमिज़ाज लड़की है यह मालती मनुभाई, इसने तो त्रिभुवन मेहता की बोलती बन्द कर रखी है।'[5]

'सुभाष ने बंगाल की नाक कटा दी।'[6]

वर्मा जी ने पात्रों के कथनों में वक्रता और चमत्कार उत्पन्न करने के लिए मुहावरों का प्रयोग किया है, इनके द्वारा पात्र अपने मन की भावनाओं को अधिक स्पष्टता से व्यक्त कर सके हैं और कहीं-कहीं उनसे पात्रों का वाक्-चातुर्य भी प्रकट हो जाता है। कुछ कथन द्रष्टव्य हैं - 'बहुत अच्छा रानी जी, आपकी आज्ञा सिर आँखों।'[7]

'हमें अब छोटी मालकिन से लोहा लेना पड़ा।'[8]

'चमेली तो मुझे फूटी आँखों नहीं देख सकती।'[9]

'शिवकुमार उनके पैरों की धूल नहीं है।'[10]

--------------------

1- थके पाँव- पृष्ठ-139
2- भूले बिसरे चित्र ,, - 40
3- सबहिं नचावत राम गोसाईं पृष्ठ-56
4- सामर्थ्य और सीमा- पृष्ठ- 6 55
5- सीधी सच्ची बातें पृष्ठ-24
6- ,, ,, पृष्ठ-48
7- अपने खिलौने पृष्ठ-36
8- भूले बिसरे चित्र पृष्ठ-136
9- अपने खिलौने पृष्ठ-201
10- ,, पृष्ठ-219

'तुम अपने ही पैरों में कुल्हाड़ी मार रहे हो ।'[1]

'इस राजनीति में भाग लेने के लिए बड़ी मोटी चमड़ी चाहिए ।'[2]

मुहावरों की भाँति-जन-जन में प्रचलित लोकोक्तियों ने भी वर्मा जी की भाषा के श्रृंगार में सहयोग दिया है । इन लोकोक्तियों के माध्यम से सामान्य जन का अनुभव वर्मा जी के पात्रों के शब्दों में झंकृत हो उठा है और इससे पात्रों के कथन अधिक स्वाभाविक तथा विश्वसनीय हो गये हैं । देखिए -

'बेटा, जान है तो जहान है, लात मारो इस नौकरी को ।'[3]

'जिसकी जैसी करनी होगी वैसा ही वह भोगेगा भी ।'[4]

'खेती सदेसों नहीं होती श्यामू, डट के मेहनत से काम करना पड़ता है ।'[5]

'नींद न देखे टूटी खाट-इश्क न देखे जात कुजात ।'[6]

'तौन वहाँ ई श्यामू पहुँचे दाल-भात माँ मूसरचन्द बनिके ।'[7]

'क्या बताऊँ, मरता क्या न करता । तुम दोनों को यहाँ से रवाना करने के लिए, जो समझ में आया कह दिया ।'[8] 'जबरा मारे रोने न दे ।'[9]

एक दो स्थान पर तो वर्मा जी ने अपने पात्र के द्वारा हिन्दी से इतर भाषाओं की कहावतों को भी उद्धृत करवाया है । लाला मेलाराम कहते हैं - 'फारसी में कहावत कि बचपन में इंसान को अपनी माँ का सहारा होता है, जवानी में अपनी तन्दुरुस्ती का सहारा होता है और बुढ़ापे में अपनी दौलत का सहारा होता है ।'[10] तथा श्री जयराज उपाध्याय कहते हैं -' अंग्रेजी में कहावत है कि लुच्चों और लफंगों के लिए ही यह राजनीति है ।'[11] संस्कृत की एक कहावत भी द्रष्टव्य है - 'शठ के साथ शठता का ही आचरण करना चाहिए ।'[12]

---

1- सीधी सच्ची बातें- पृ० 497
2- प्रश्न और मरीचिका- पृ० 513
3- थके पाँव- पृ० 115
4- भूले बिसरे चित्र- पृ० 38
5- ,, पृ० 177
6- सबहिं नचावत राम गोसाईं-पृ० 102
7- भूले बिसरे चित्र- पृ० 176
8- अपने खिलौने- पृ० 36
9- ,, पृ० 119
10- प्रश्न और मरीचिका पृ० 481
11- ,, पृ० 382
12- सीधी सच्ची बातें पृ० 526

वर्मा जी के उपन्यासों में बिखरे मुहावरों और कहावतों में से कुछ उदाहरणों के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि भाषा के विपुल भण्डार से अवसरानुकूल लोकोक्तियाँ और मुहावरों का प्रयोग करके उन्होंने अपनी सूझ-बूझ, वाग्विदग्धता और मर्मभेदिनी निरीक्षण शक्ति का अद्भुत परिचय दिया है। इससे उनका भाषा पर पूर्ण अधिकार होने का प्रमाण मिल जाता है।

उक्तियाँ और सूक्तियाँ :- मुहावरों और लोकोक्तियों के अतिरिक्त वर्मा जी ने विद्वानों, संतों और अनुभवी व्यक्तियों की सूक्तियों के उद्धरण से भी अपनी बातों को अधिक स्पष्ट और प्रभावशाली बनाने का यत्न किया है, यह बात सामान्यत: लोगों में पायी जानेवाली प्रवृत्ति के अनुकूल है। वर्मा जी स्वयं ऐसी उक्तियाँ देते चलते हैं जिनमें जीवन के गहन अनुभव का सार समाकलित हो गया है। 'भूले बिसरे चित्र' में तो सूक्तियाँ भरी पड़ी हैं। वर्मा जी के सभी उपन्यासों में सूक्तियों को स्थान दिया गया है किन्तु 'भूले बिसरे चित्र' में तो सूक्तियाँ भरी पड़ी हैं। कुछ उद्धरण देखिए -

'भला धनुष से निकला तीर और मुँह से निकली बात कहीं वापस लौटते हैं।'[1]

'पाप गले आकर पड़ता है।'[2]

'सावधान का विनाश नहीं होता।'[3]

'कर्ज बुरी बला है।'[4]

'न्याय और सत्य में सीमाएँ नहीं हुआ करतीं, वहाँ भावना के लिए कोई गुंजाइश नहीं।'[5]

विभिन्न उपन्यासों में से भी कुछ उदाहरण देखिए -

'निंदा भरी अफवाहों के पंख होते हैं।'[6]

'इंसान अकेला आता है और अकेला जाता है। कुटुम्ब- परिवार, सगे-पराए, यह सब तो माया है।'[7]

---

| | | |
|---|---|---|
| 1- | भूले बिसरे चित्र- | पृ0 44 |
| 2- | ,, | पृ0 40 |
| 3- | ,, | पृ0 70 |
| 4- | ,, | पृ0 43 |
| 5- | ,, | पृ0 74 |
| 6- | 99 रेखा- | पृ0 318 |
| 7- | प्रश्न और मरीचिका- | पृ0 480 |

'बालिग लड़का बराबरी वाला हो जाता है।'[1]

'रोज़ बनती और मिटती हुई दुनिया में कौन किसका है।'[2]

कहीं-कहीं पात्रों के चिंतन-मनन और अन्तर्द्वन्द्व के अवसर पर वर्मा जी ने काव्यात्मक और दार्शनिक उक्तियों का स्मरण कराया है। यहाँ पात्र अपने या दूसरे के मन को सान्त्वना देने के लिए इन उक्तियों का प्रयोग करते दिखते हैं। देखिए -

'हुई है वही जो राम रचि राखा।'[3]

'बीती ताहि बिसार दे आगे की सुधि लेई।'[4]

'विनाश काले विपरीत बुद्धिः।'[5]

' न शस्त्र मुझे बेध सकते हैं, न आग मुझे जला सकती है, यानी मनुष्य कभी मरती नहीं।'[6]

' न मनुष्य अपनी इच्छा से जन्म लेता है, न अपनी इच्छा से मरता है। ऊपर से कार्य और कारण एक दूसरे से बुरी तौर से सम्बद्ध दिखते हैं, लेकिन इस कार्य और कारण की लम्बी श्रृंखला को देख पाना हमारे वश में नहीं है।'[7]

जन-जन में ~~प्रच~~ प्रचलित सूक्तियों को उद्धृत करने के अतिरिक्त यह सहज स्वाभाविक है कि एक जागरूक और चिंतन-मननशील साहित्यकार स्वानुभूत तथ्यों के आधार पर टिप्पणी करता चले। वर्मा जी भी अपने उपन्यासों में स्थान-स्थान पर इस प्रकार की उक्तियाँ करते चलते हैं। यह उक्तियाँ प्राय: वर्मा जी के व्यक्तित्व के अनुकूल अत्यंत तार्किक, विद्रोहात्मक और बौद्धिक होती हैं। देखिए -

'विवाह-बंधन दैवी नहीं है। उसका निर्माण समाज ने किया है। उसका एकमात्र लक्ष्य तृष्णा को वशीभूत करने का है।'[8]

---

1- प्रश्न और मरीचिका- पृ० 143
2- वह फिर नहीं आई- पृ० 38
3- भूले बिसरे चित्र- पृ० 63
4- प्रश्न और मरीचिका पृ० 21
5- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 140
6- सीधी सच्ची बातें- पृ० 504
7- प्रश्न और मरीचिका- पृ० 517
8- पतन- पृ० 17

'यदि तुम ईश्वर को ही जान सको, यदि तुम्हारी कल्पना में ही वह अखण्ड और नि:सीम अनन्त का रचयिता आ सके, तो फिर वह ईश्वर कैसा ? पर योगी, हमारा और तुम्हारा ईश्वर, जिसकी हम पूजा करते हैं, उस ईश्वर से भिन्न है। हमारा और तुम्हारा ईश्वर कल्पना-जनित ईश्वर है। अपनी आवश्यकता को पूरी करने के लिए ही समाज ने उस ईश्वर को जन्म दिया है।'[1]

'सुख तृप्ति है और शान्ति अकर्मण्यता, पर जीवन अविकल कर्म है, न बुझने वाली पिपासा है। जीवन हलचल है, परिवर्तन है; और हलचल तथा परिवर्तन में सुख और शान्ति का कोई स्थान नहीं।'[2]

'भावना ही मनुष्य का जीवन है, भावना ही प्राकृतिक है, भावना ही सत्य है और नित्य है। भावनाओं के मामले में मनुष्य विवश है। और यही विवशता, तथा इस विवशता के कारण प्राणि-मात्र में विषमता संसृति का नियम है।'[3]

'शक्ति और सम्पन्नता के साथ एक बहुत बड़ा अभिशाप लगा रहता है, वह यह कि आदमी इनके मद में अपना विवेक और संयम खो देता है और चरित्रहीन बन जाता है।'[4]

इन उक्तियों से स्पष्ट हो जाता है कि वर्मा जी ने जीवन के विविध पक्षों पर अपने ढंग से सोचा समझा है और अपने चिंतन को इस ढंग से प्रस्तुत किया है कि वह अपनी तथ्यपरकता के कारण दूसरों के लिए भी ग्राह्य बन जाता है। कहीं-कहीं वर्मा जी ने पात्रों के भावों और क्रियाओं के संदर्भ में भी उक्तियाँ की हैं जिनसे मानव-जीवन के अनेक तथ्यों का उद्घाटन होता है -

अन्दर वाले अन्धकार के आगे बाहर वाले अन्धकार का कोई अस्तित्व ही नहीं है।'[5]

'यह दुनिया खरीदने वालों से भरी है, जहाँ देखो खरीदने वाला मौजूद है। लेकिन खरीदा उसे जाता है जो बिकने के लिए है।'[6]

---

| | | |
|---|---|---|
| 1- | चित्रलेखा- | पृ० 36 |
| 2- | ,, | पृ० 24 |
| 3- | टेढ़े मेढ़े रास्ते- | पृ० 138 |
| 4- | भूले बिसरे चित्र | पृ० 429 |
| 5- | रेखा- | पृ० 316 |
| 6- | सीधी सच्ची बातें- | पृ० 295 |

'आदमी आमतौर से दूसरों को इतना अधिक धोखा नहीं देता जितना वह खुद अपने को देता है।'[1]

'आधारभूत व्यक्तित्व में देवता होता है, दानव होता है। नेकी और बदी, क्रिया और प्रतिक्रिया के रूप में हर एक व्यक्तित्व के भाग हैं। अन्तर इतना है कि यह आधारभूत व्यक्तित्व परिस्थिति के अनुसार अपने को प्रकट करता है।'[2]

वर्मा जी के उपन्यासों में इस प्रकार की उक्तियाँ प्रचुर मात्रा में मिलती हैं। इन उक्तियों में भाषा का सरल और सहज सौष्ठव तो प्रशंसनीय है ही, साथ ही 'सामान्य' को 'विशेष' और 'विशेष' का 'सामान्य' से समर्थन हो जाने के कारण उनका कलात्मक सौन्दर्य द्विगुणित हो गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा की विपुल समृद्धि के जितने भी उपकरण हो सकते हैं, वर्मा जी ने उन सबका यथाशक्य सदुपयोग किया है इसके कारण उनकी भाषा में विविधता और बहुरंगता का अपार सौन्दर्य उद्भासित हुआ है। यहाँ वर्मा जी की भाषा की विविधता के विषय में कुछ चर्चा कर लेना हम समीचीन समझते हैं।

वर्मा जी ने विभिन्न मानसिक धरातल के पात्रों के अनुकूल साहित्यिक और बोलचाल की हिन्दी का तो प्रयोग किया ही है, इसके अतिरिक्त विशिष्ट क्षेत्र से (ग्राम्य-जीवन) से सम्बंधित पात्रों के कथोपकथन में क्षेत्रीय भाषा को व्यवहृत किया है, इसका उल्लेख हम पिछले पृष्ठों में कर चुके हैं। इसी प्रसंग में एक बात और निवेदित है कि विभिन्न प्रांतों और सम्प्रदायों से सम्बंधित पात्रों से संवाद बुलवाते समय उन्होंने उनकी भाषा विषयक विशिष्टताओं को सदैव दृष्टि में रखा है। केशव बाबू के सहयोगी चटर्जी बाबू को हिन्दी बोलने का ढंग एकदम बंगालियों जैसा है - 'केशो बाबू- अब नहीं चलेगा तुम्हारा हीला, जे हुआ दूसरा दावत। अभी लारका होने का दावत नहीं दिया - आजकल में साल-भर टाल दिया।'[3] बम्बई में हिन्दी बोलने का विशिष्ट लहज़ा बन गया है, जिसे 'बम्बइया हिन्दी' का नाम भी दे दिया गया है। अंग्रेजी शब्दों की चर्चा करते समय हमने 'परवेज़' की भाषा के रूप में पढ़े-लिखे लोगों की 'बम्बइया हिन्दी' का उद्धरण प्रस्तुत

---

1- सीधी सच्ची बातें- पृ0 145
2- भूले बिसरे चित्र पृ0 359
3- थके पाँव- पृ0 55

किया था । अब देखिए एक अल्पशिक्षित व्यक्ति की बम्बइया हिन्दी का नमूना -

'तू काम का आदमी है भइया - और मैं भी काम का आदमी हूँ । मेरे को न सही, तेरे ही को मुझसे काम पड़ सकता है । गोरेगाँव में मैं रहता हूँ, किसी से रघुनाथ दादा का नाम ले लेना ; वह मेरा मकान तुझे बता देगा । अच्छा अब जा, तुझसे कोई नहीं बोलेगा ।'[1]

यहाँ उल्लेखनीय है कि बम्बई में उत्तरभारतीयों को और विशेषरूप से सागभाजी और दूध बेचनेवाले उत्तरभारतीयों को 'भइया' और गुंडों को 'दादा' विशेषणों से संबोधित किया जाता है । इसके अतिरिक्त वहाँ 'आप' वाली शिष्टाचारयुक्त भाषा का इतना प्रचलन नहीं है जितना 'तू-तड़ाक' वाली भाषा का । इसीलिए उपर्युक्त उद्धरण में तेरे को, मेरे को, तुझे, तू, जा इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया गया है । इसी प्रकार मालती स्वयं गुजराती होने के कारण अपनी सहेलियों को 'चम्पा बेन' और 'मनसाबेन'[2] कहकर बुलाती है क्योंकि गुजरात में महिलाओं को नाम के आगे 'बेन' अर्थात् बहन कहकर सम्बोधित करने का प्रचलन है । 'भूले बिसरे चित्र' के मिस्टर जोनाथन डेविड जो क्रिश्चियन होते हुए भी स्वयं को यूरोपियन कहते हैं, अंग्रेजों की नकल पर हिन्दी बोलने का प्रयास करते दीखते हैं -

'ए मीर टुम, आ गया, हम टुमको ही तलाशता था ---- टुम अमको बुलाया था मैन, बोलो ।'[3]

वर्मा जी के उपन्यासों में जब पंजाबी या मुस्लिम या अल्पशिक्षित पात्र 'संस्कृत' के अति प्रचलित शब्दों का प्रयोग करते हैं तो वह उनका सही उच्चारण नहीं कर पाते हैं । इस स्वाभाविक प्रवृति के अनुरूप संस्कृत शब्दों का बिगड़ा रूप द्रष्टव्य है - बिरहमन(पतन-29) आरियासमाजी, धरम, किरपा, अमरित(भूले बिसरे चित्र पृ० क्रमश: 238, 239, 135, 501) धरमशास्तर(सबहिं नचावत राम गोसाईं- पृ०9), संसकीरत(प्रश्न और मरीचिका-पृ० 21)

वर्मा जी के उपन्यासों में बच्चों के प्यारे-प्यारे बोल सुनने के अवसर कम ही आते हैं, जहाँ कहीं छोटे बच्चे बोलते दिखते हैं वहाँ वर्मा जी '----- ने तुतलाते हुए कहा' कहकर बच्चों की तोतली भाषा का संकेत कर देते हैं । केवल एक स्थान पर बच्चों की तोतली भाषा की झलकी भी दिख जाती है । यथा- 'औल बाबा मैं --- मैं भी चलूँदा ।

और माँ । --- माँ भी चलेंदी न ।'[4]

---

1- आखिरी दाँव- पृ० 78
2- सीधी सच्ची बातें- पृ० 610
3- भूले बिसरे चित्र- पृ० 239
4- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 160

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि वर्मा जी का भाषा-भण्डार अपरिमेय है, उन्होंने शब्दों को उचित स्थान देकर उनकी सार्थकता सिद्ध कर दी है। पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग करने के कारण उसमें प्रभूत विविधता भी दृष्टिगत होती है। इनके अतिरिक्त भाषा के प्रसंग में भाषा की लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता तथा भाषा में ओज,प्रसाद और माधुर्य आदि गुणों का उल्लेख भी निर्भ्रान्ति रूप से किया जाता है। इन सबकी चर्चा हम शैली के अन्तर्गत यथाप्रसंग में करेंगे।

वर्मा जी की लेखन शैली :- वर्मा जी की शैली गतिशील भाषा से निर्मित रोचक,सरल, स्वाभाविक एवं प्रवाहपूर्ण रूप से विभूषित है। उन्होंने भावों और विचारों की अभिव्यंजना, वाक्य-रचना और शब्द-सु-संचयन में कहीं भी दुर्बोधता एवं कृत्रिमता नहीं आने दी है। उनकी शैली का सबसे बड़ा गुण उनकी अनासक्ति में निहित है, उसमें आडम्बरपूर्ण विलक्षणता का मोह कहीं भी दृष्टिगत नहीं होता। भाव के प्रवाह में जहाँ काव्यात्मकता, चमत्कृति और अलंकारों का सहजागमन हो गया है, उसे उपन्यासकार ने सम्पूर्ण हार्दिकता और सशक्तता के साथ अभिव्यंजित किया है, इसीलिए 'चित्रलेखा' जैसे गंभीर और कवित्व-पूर्ण उपन्यास में भी भाषा के स्वच्छंद और सरल प्रवाह में वर्मा जी ने बाधा नहीं आने दी है। रोचकता और स्वच्छंद गतिशीलता को अपनी शैली का मुख्य आधार बनाकर वर्मा जी ने उपन्यासों में प्रचलित विभिन्न शैलियों में अपने उपन्यासों का सृजन किया है।

सामान्यत: उपन्यास-लेखन में पाँच शैलियाँ शैलियाँ प्रयुक्त होती हैं - (1) वर्णनात्मक,(2) आत्मकथात्मक,(3) पत्रात्मक,(4) डायरी शैली एवं(5) मिश्रित शैली।[1] शर्मा जी के मतानुसार 'हिन्दी में ही नहीं, विश्व की सभी भाषाओं में अधिकांश उपन्यास वर्णनात्मक वर्णनात्मक शैली में लिखे गये हैं और लिखे जाते हैं।' वर्मा जी के भी लगभग सभी उपन्यास वर्णनात्मक शैली में लिखे गये हैं, केवल 'वह फिर नहीं आई' तथा 'प्रश्न और मरीचिका' में वर्मा जी ने आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग किया है। यद्यपि तथ्य तो यह है कि उपन्यासकार एक शैली को मुख्य आधार बनाकर आवश्यकतानुसार सभी शैलियों का अवलम्बन किसी न किसी रूप में अवश्य ग्रहण करता है। उदाहरण के लिए 'प्रश्न और मरीचिका' को ही देखें। यह उपन्यास एक युवा-पत्रकार की आत्मकथा के रूप में ही प्रस्तुत हुआ है,किन्तु वह

---

1- हिन्दी उपन्यास, सिद्धान्त और समीक्षा- डा० मक्खनलाल, शर्मा,पृ० 91-92

पत्रकार अपने जीवन के विविध प्रसंगों को एक सुसंगठित और सुनियोजित कथा के रूप में उसी प्रकार वर्णित करता है जिस प्रकार वर्णनात्मक शैली में लिखे गये उपन्यास में उपन्यासकार सर्वज्ञ की भाँति कथा कहता चलता है। प्रस्तुत उपन्यास में विभिन्न पात्रों के पत्र 'पत्रात्मक-शैली' की झलक भी दिखा जाते हैं। 'वह फिर नहीं आई' में भी आत्मकथा, पत्र और वर्णनात्मक शैली का मिश्रित रूप ही दृष्टिगोचर होता है। इसी प्रकार वर्मा जी ने वर्णनात्मक शैली में लिखे गये अपने उपन्यासों में उपरि-उद्धृत शैलियों में से डायरी शैली को छोड़कर सभी शैलियों की विशेषताओं को न्यूनाधिक मात्रा में अपना लिया है। वर्णनात्मक शैली में लिखे गये उपन्यासों में वर्मा जी सर्वज्ञाता के रूप में कथा का सूत्र अपने हाथ में रखते हैं। पाठकों को सम्बोधित करते हुए पात्रों के भावों और क्रियाओं का वर्णन भी उपन्यासकार करता चलता है किन्तु कहीं-कहीं कथा में मोड़ लाने के लिए अथवा पात्रों के आन्तरिक विचारों की अभिव्यक्ति के लिए कथाकार ने नाटकीय और संवादात्मक शैलियों का उपयोग किया है। इसी प्रकार अपनी बात को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने के लिए, कथानक के विकास में कार्य-कारण सम्बंध स्थापित करने के लिए उपन्यासकार ने पात्रों के कथोपकथन, मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, आत्मविश्लेषण, दृश्य-विधान और रूप-विधान आदि सभी का अवलम्ब ग्रहण किया है इसलिए अधिकांशतः उनकी शैली मिश्रित शैली के समीप पहुँच गयी है। अतः हम अध्ययन की सुविधा एवं क्रमबद्धता के लिए उपन्यासों में प्रयुक्त शैलियों को तीन रूपों में विभक्त कर सकते हैं।[1]

1- <u>शैली का वाह्य रूप :-</u> शैली के प्रस्तुत रूप के अन्तर्गत काव्यात्मक और अलंकृत शैली को लिया जा सकता है। इसमें ललित पद-संयोजना, अभिव्यंजना कौशल, शब्द शक्तियों के युक्तिसंगत प्रयोग और अलंकारों द्वारा भाषा की आकर्षक रूपसज्जा का परीक्षण किया जायगा।

2- <u>शैली का आन्तरिक रूप :-</u> इसमें हम विभिन्न भावों और विचारों की अभिव्यक्ति और आन्तरिक गुणों के प्रकाशन की रीति को ले सकते हैं। इसमें पात्र, रस, और अवसर के अनुरूप मानसिक ~~द्वन्द्व~~ अन्तर्द्वन्द्वों की अभिव्यक्ति की शैली, प्रलाप शैली, आवेश शैली भाषण, एवं सम्बोधन शैली, व्यंग्यात्मक शैली आदि का समावेश किया जा सकता है।

---

1- 'आचार्य चतुरसेन का कथा-साहित्य' में डा० शुभकार कपूर के वर्गीकरण के अनुसार- पृष्ठ- 480-481

3- शैली ~~शैल~~ का मिश्रित रूप :- शैली के मिश्रित रूप में उपर्युक्त दोनों शैलियों का समन्वित रूप दृष्टिगत होता है क्योंकि विभिन्न वर्णनों और रूप-चित्र के अंकन के अवसर पर उपन्यासकार जहाँ आकर्षक शब्द-चयन, वाक्य-गठन और अलंकारपूर्ण रीति से चित्र को साकार करता है वहीं अपनी कल्पना, एवं सूझ-बूझ के द्वारा विभिन्न भावों की प्राण-प्रतिष्ठा करके चित्र को सम्पूर्णता एवं सजीवता प्रदान करता है।

शैली का वाह्य रूप :- शैली के वाह्य रूप को सँवारने के लिए कथाकार अलंकारों, मुहावरों, कहावतों, काव्यात्मक उक्तियों और शब्द-शक्तियों का आश्रय लेता है। यद्यपि कृति का वास्तविक सौन्दर्य तो उसके भाव और विषय में ही निहित है, तथापि शैली के वाह्य-रूप की वही छवि है जो एक नारी द्वारा धारण किये हुए सुरुचिपूर्ण अलंकारों की होती है। यदि कथाकार अपने विचारों को प्रभावशाली अभिव्यंजना का अलंकरण प्रदान करना चाहता है तो उसे उपर्युक्त सभी अवयवों को बड़ी कलात्मकता के साथ प्रयोग में लाना पड़ता है। वर्मा जी ने शैली के निम्नलिखित रूपों में इनका यथावश्यक किन्तु सार्थक प्रयोग किया है -

काव्यात्मक अथवा सरस शैली :- जीवन के भावात्मक और रंगीन क्षणों का चित्रण करते समय उपन्यासकार की शैली रसभीनी, सरस और काव्यात्मक हो उठती है, उसके लेखन में लाक्षणिकता, सांकेतिकता और ध्वन्यात्मकता का सौन्दर्य स्वत: मुखरित होने लगता है। विशेषत: 'चित्रलेखा' के वैदुष्यपूर्ण पात्रों के वार्तालाप में इस प्रकार की शैली का प्राधान्य मिलता है। वर्मा जी के उपन्यासों से कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं -

'प्रकाश पर लुब्ध पतंग को अन्धकार का प्रणाम है।'[1]

'नर्तकी! मैंने अभी तक निराकार की उपासना की है, अब साकार को अपनाने की इच्छा हो रही है।'[2]

इन वाक्यों की महती अर्थवत्ता उपन्यास के विशिष्ट प्रसंग में रखकर स्पष्ट की जा सकती है। प्रथम कथन की अपूर्व सार्थकता तब सिद्ध होती है जब हम देखते हैं कि चित्रलेखा के इस अभिवादन के पूर्व कुमारगिरि अपने 'ज्ञान के आलोकमय संसार' और 'स्त्री अंधकार है'

---

1- चित्रलेखा- पृष्ठ-29

2- ,, पृष्ठ-127

की चर्चा कर चुका है । इसी प्रकार वासनातुर कुमारगिरि `साकार को अपनाने` की बात कहकर चित्रलेखा को प्राप्त करने की इच्छा को लाक्षणिक शैली में व्यक्त करता है । पात्रों के मनोगत भावों को व्यक्त करने के लिए उपन्यासकार ने प्राय: लक्षणा का प्रयोग किया है । बीजगुप्त की मनोवेदना को उद्घाटित करने के लिए कथाकार का कथन द्रष्टव्य है -

`चतुर्दशी का चाँद पूर्व दिशा के क्षितिज पर जल रहा था, और बीजगुप्त के हृदय में एक ज्वाला जल रही थी । दास और दासियों के झुण्ड-के-झुण्ड मशाल हाथों में लिए हुए साथ थे - मशाल के उन शोलों में बीजगुप्त ने अपने हृदय में जलते हुए शोलों का प्रतिबिम्ब देखा ।`[1]

इसी प्रकार यशोधरा के मन का उल्लास प्रकृति की मनोरम क्रीड़ा से व्यक्त हुआ है -

`आर्य बीजगुप्त- देखो -- प्रकृति के इस सुन्दर रूप को तो देखो । यहाँ कितना उल्लास है, कितनी शान्ति है, और कितना सौन्दर्य है । सारे जगत् की चिन्ता, उसकी तृष्णा और अभिशाप से भरी हलचल से दूर, अति दूर यहाँ पर निष्कलंक जीवन तितलियों के रंगीन परों के साथ अठखेलियाँ कर रहा है ।`[2]

इस उद्धरण में `निष्कलंक जीवन तितलियों के रंगीन परों के साथ अठखेलियाँ कर रहा है` वाक्य की अर्थाभिव्यक्ति अभिधा से न होकर लक्षणा से ही हो सकती है । साथ ही सम्पूर्ण उद्धरण व्यंजना का अनुपम नमूना भी है । वर्मा जी के उपन्यासों की भाषा में अभिव्यंजना की अद्भुत क्षमता परिलक्षित होती है ।`रेखा` से एक उद्धरण द्रष्टव्य है । रेखा डॉक्टर योगेन्द्रनाथ मिश्र द्वारा अपनी शारीरिक भूख शान्त करना चाहती है, इसके लिए वह कैसी शिष्ट और सांकेतिक भाषा का प्रयोग करती है -`मुझे तुम अपने सहारे से वंचित न करो, मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ - और डाक्टर मिश्र उसकी मनोकामना को पूर्ण करता है - इस घटना पर उपन्यासकार की व्यंजनात्मक टिप्पणी कितनी सशक्त है और `घटित` को अंधकार में रखते हुए भी बड़ी शालीनता से प्रकाशित कर देता है -`इस सहारे का रूप क्या है ? जीवन का कठोर सत्य क्या है ? आज तक इसे कोई नहीं जान सका ।

-------------------------

1- चित्रलेखा - पृष्ठ-114

2- ,, पृष्ठ-117

रात घिरती आ रही थी, लेकिन योगेन्द्रनाथ के कमरे में अन्धकार छाया हुआ था, और प्रकाश पाने के लिए दो प्राणी उस अंधकार में डूबते जा रहे थे।'[1]

'टेढ़े मेढ़े रास्ते' से एक उद्धरण और देखिए - पण्डित रामनाथ का पुत्र दयानाथ पिता की इच्छा के का विरोध करके कांग्रेस के आन्दोलन में भाग लेने के कारण जेल चला गया है। उस समय रामनाथ तिवारी दयानाथ की पत्नी और बच्चों को अपने साथ ले जाने के लिए आते हैं। दयानाथ की पत्नी राजेश्वरी स्वयं जाने के लिए तो स्पष्ट शब्दों में मना कर देती है किन्तु बच्चों के बारे में उसका प्रतिवाद अत्यधिक मार्मिक और व्यंजनापूर्ण है -

अगर आप चाहते हैं तो इन्हें ले जा सकते हैं। मैं जानती हूँ कि इन पर आपका पूरा अधिकार है। पर माता की ममता को इन बच्चों से छीनकर आप इनका उपकार करने के स्थान में अपकार ही करेंगे।'[2]

बच्चों के पितामह के समक्ष उनके अधिकार की चर्चा करते हुए भी माँ के अधिकार की कितनी आवृत्त किन्तु स्पष्ट व्यंजना इन शब्दों द्वारा हो गई है, यह ध्यातव्य है।

वर्मा जी के उपन्यासों में काव्यात्मकता, सरसता, अभिव्यंजकता लाने का श्रेय बहुत कुछ उनकी मुहावरे और कहावतों से आपूर्ण भाषा को जाता है। इन मुहावरों और लोकोक्तियों का अभिप्राय प्राय: लक्षणा से ही स्पष्ट हो सकता है। मुहावरों आदि के यथोचित प्रयोग ने वर्मा जी की भाषा को कैसी तीक्ष्ण और अर्थवान अभिव्यंजना प्रदान की है, इसकी चर्चा हम प्रस्तुत अध्याय में पिछले पृष्ठों में कर चुके हैं।

लक्षणा और व्यंजना तो प्राय: सभी साहित्यकारों की शैली को काव्यात्मक सौन्दर्य प्रदान करती हैं, किन्तु वर्मा जी की कथा-कथनकला का अपार सौन्दर्य अभिधा की वर्णनात्मक शैली में निहित है। सीधे-सादे शब्दों में सम्पूर्ण चित्र को उपस्थित कर देना उनके अपूर्व कौशल का प्रमाण है। गद्य में काव्य की सी गति पाठकों का मन मुग्ध कर लेने के लिए पर्याप्त है -

'दिन भर पानी बरसता रहा, उसी गति के साथ। जो जहाँ था मानों वहीं जम गया, चारों ओर की गति सिमटकर मानो जल की उस अखण्ड धारा में केन्द्रित हो गई थी। और फिर रात घिरी। लेकिन पानी उसी तरह बरसता रहा। जंगल में चीत्कार करते हुए

---

1- रेखा - पृ० 274

2- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 140

पशु-पक्षियों के स्वर, गिरते हुए वृक्षों की चरांहट से भरा क्रंदन ; इन सब आवाजों को दबा रखा था आसमान से गिरने वाली जलधारा की भूमि से टकराहट की आवाज ने । केवल मनुष्य सुरक्षित था । अपने बुद्धि-बल से विज्ञान की सहायता प्राप्त करके जो मकान उसने बनाये थे उनमें बन्द बैठा हुआ मनुष्य प्रकृति के पागलपन की इस उग्रता को भयभीत-सा देख रहा था ।'[1]

यहाँ कुछ उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि वर्मा जी के उपन्यासों में काव्यान्तर्गत प्रतिष्ठित तीनों शब्द-शक्तियाँ उनकी भाषा-शैली की अमोघ शक्ति के रूप में प्रकट हुई हैं । दुरूह लाक्षणिकता और क्लिष्ट व्यंजना ने उनके उपन्यासों में कहीं भी बाधा उत्पन्न नहीं की है वरन् अपने सहज सरल रूप में भाषा को लाक्षणिक मूर्तिमत्ता, ध्वन्यात्मकता, सांकेतिकता तथा स्वाभाविक अलंकरण की काव्यात्मक विशेषताओं से अभिमंडित किया है ।

<u>अलंकृत शैली</u> :- वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में भाषा के श्रृंगार के लिए अलंकारों का भी आश्रय लिया है । अलंकारों में भी विशेषरूप से उपमा और उत्प्रेक्षा का उन्होंने अधिक प्रयोग किया है । उनके उपन्यासों की सीधी सरल भाषा में अलंकारों की स्थिति ठीक वैसी ही है जैसे किसी अपार रूप ~~बव~~ लावण्य से युक्त किसी ग्राम्य बाला ने मात्र अपने मुख पर एक चमकीली नाक की लौंग पहनकर अपना सौन्दर्य द्विगुणित कर लिया हो । उनकी भाषा अलंकारों के हल्के-फुल्के श्रृंगार में अल्हड़-सी अपनी छवि बिखेरती चलती है । वह कहीं भी अलंकारों से बोझिल होकर गतिहीन नहीं हुई है। बहुरंगी कल्पना को अलंकारों से सुसज्जित कर वर्मा जी ने अनेक स्थलों पर ~~ब~~ कविता जैसा लावण्य भर दिया है ।

श्रृंगार-गृह से सभा-मण्डल में चित्रलेखा के प्रवेश का दृश्य द्रष्टव्य है -

'काँपती हुई उषा के धुँधलेपन को चीरते हुए मानो प्रात:कालीन सूर्य के अरुण प्रकाश ने प्रवेश किया । हेमन्त के शीतल तथा शुष्क वायु में मधुमास के हल्के ताप और मतवाले सौरभ का समावेश हुआ ।'[2]

यहाँ चित्रलेखा के अरुणिम, ऊष्म और सुरभित सौन्दर्य को कलाकार ने उत्प्रेक्षा अलंकार के द्वारा जीवंत कर दिया है । इसी प्रकार कहीं-कहीं वर्मा जी ने अत्यधिक सार्थक और मार्मिक उपमाओं के द्वारा अपनी उक्ति को अत्यन्त प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया है -

' मैं तुमसे कह रहा हूँ कि मेरे अन्दर एक प्रकार का भय जाग पड़ा है इस रोहिणी से । इस तरह तो रोहिणी कभी सिमटी नहीं । मैंने शेर को हमला करते हुए देखा है, हमला

---

1- सामर्थ्य और सीमा- पृ० 272

2- चित्रलेखा- पृ० 37

करने से पहले वह ठीक इसी तरह सिमटता है ।'[1]

शांत स्तब्ध सूर्यास्त का दृश्य भी दर्शनीय है -

'क्षितिज से उभरे हुए- से ये धुएँ के रंग के मटमैले बादल जैसे काले मटमैले रंग का सागर फैला हुआ हो । और वह निस्तेज थका हुआ सूर्य उस सागर में गिरता जा रहा है- गिरता जा रहा है । समस्त विश्व को अपनी प्रखर किरणों से त्रस्त कर देने वाला यह सूर्य इस समय कितना विवश और दयनीय f दीख रहा है ।'[2]

वर्मा जी ने सुन्दरी नारियों के रूप-वर्णन को चमत्कृति और अपूर्वता प्रदान करने के लिए अलंकृत शैली का प्रयोग किया है । उनके प्राय: सभी उपन्यासों में नारी-पात्रों के सुललित रूप-लावण्य को रंग-बिरंगी उपमाओं द्वारा प्रभासित किया गया है किन्तु 'चित्रलेखा' के रूप-वर्णन में कथाकार का मनोयोग विशेष रूप से द्रष्टव्य है -

' उसका मुख पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति था और उसकी लहराती हुई वेणी नाग की भाँति थी, जो विष से त्रस्त होकर चन्द्रमा से उसका अमृत छीनने को उससे लिपट गया हो । उसकी वेणी में गुँथे हुए मुक्ता-जाल इस प्रकार शोभित हो रहे थे, मानो चन्द्रमा को संकट में देखकर तारकावलि पंक्ति में बँधकर काले नाग से भिड़ गयी थी ।'[3]

ऐसा प्रतीत होता है कि काले बालों में मोतियों का श्रृंगार वर्मा जी को विशेष प्रिय है, इसीलिए 'चित्रलेखा' के उन्माद भरे सौन्दर्य के वर्णन में उन्होंने इसका एक अन्य स्थान पर भी उल्लेख किया है -

' उसके सिर के बाल अन्धकार की भाँति काले थे । उन बालों से गुँथी हुई मोतियों की माला प्रकाश की भाँति चमक रही थी ।'[4] अंधकार और प्रकाश को एक साथ उपस्थित कर वर्मा जी ने अपनी व्यंजना में अनोखी द्युति उत्पन्न कर दी है । कुछ अन्य उपन्यासों से नारी-सौन्दर्य का अलंकारिक वर्णन देखिए -

'उसके मुख पर सुन्दर गुलाब की आभा आ गई थी । उसकी आखें शुभ्र और निर्मल आकाश की भाँति द्युतिमान थी ।'[5]

---

1- सामर्थ्य और सीमा- पृ० 95
2- ,, पृ० 107
3- चित्रलेखा- पृ० 37
4- ,, पृ० 23
5- वह फिर नहीं आई- पृ० 105-6

'एक बिजली-सी कौंध गई सब लोगों की आँखों के सामने । अनुपम सौन्दर्य, मानो स्वर्ग से कोई अप्सरा उतर आई हो ।'[1]

'ड्रेसिंग टेबल के सामने बैठी हुई रेखा बाल सँवारते-सँवारते अपने प्रतिबिम्ब से उलझ गई । उसके सामने वाली दो बड़ी-बड़ी आँखों में एक प्रकार की चमक थी । कमान की तरह खिंची हुई घनी भौंहों के नीचे मछली के आकार की दो आँखें-दुग्ध के के सरोवर में मानो दो गहरी नीली गोलियाँ उतरा रही हों ।'[2]

'कितना भोला, कितना निर्दोष चेहरा । हरिणी की-सी बड़ी-बड़ी आँखें । बेतरह डरी हुई और सहमी हुई ।'[3]

आधुनिक युवतियों का रूप-वर्णन करते समय वर्मा जी ने परम्परागत उपमाओं के अतिरिक्त सौन्दर्य के अधुनातन प्रतिमानों का भी प्रयोग किया है -' असीम सुन्दरी, संगमरमर का -सा रंग, ग्रीक मूर्तियों की भाँति उसके नाक नक्श, नपे-तुले शब्दों में बोलना । ऐसा लगा था अभिमान की साकार प्रतिमा है वह ।'[4] एक स्थान पर तो कथाकार रानी मानकुमारी में 'मेडोना ' से भी अधिक सौन्दर्य की कल्पना कर लेता है ।[5]

रूप-चित्रण में एक रचनात्मक कलाकार की अलंकृत शैली तो सर्वथा उपयुक्त ही है, साथ ही जहाँ कहीं भी वर्मा जी को अपनी भावाभिव्यक्ति को सघनता एवं तीव्रता प्रदान करने की आवश्यकता प्रतीत हुई है, वहीं उन्होंने अलंकारों का विशेषतया उपमा अलंकार का प्रयोग किया है ।

कुछ उद्धरण देखिए -

'वह माणिक रक्त की भाँति लाल था और उससे जैसे प्रकाश की रेखाएँ फूटी पड़ती थीं ।'[6]

'रेखा को जैसे बिजली का धक्का लग गया हो ।'[7]

'एक रंगीन स्वप्न की भाँति श्यामला मेरे जीवन में आकर चली गई ।'[8]

---

1- सामर्थ्य और सीमा- पृ० 55

2- रेखा- पृ० 7

3- प्रश्न और मरीचिका- पृ० 88

4- ,, पृ० 140

5- सामर्थ्य और सीमा- पृ० 131

6- ,, ,, पृ० 377

7- रेखा- पृ० 303

8- वह फिर नहीं आई- पृ० 103

'उस अग्निशिखा का प्रकाश ग्रीष्म ऋतु के मध्यान्ह-कालीन सूर्य के प्रकाश से कहीं अधिक तीव्र था ।'[1]

'जर्मनों के टैंक अब निकट आ गए थे । चाँदनी के धुँधले प्रकाश में जगतप्रकाश को लग रहा था कि आग उगलते हुए दैत्य बढ़े चले आ रहे हैं ।'[2]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि वर्मा जी ने अपनी भाषा के अलंकरण के लिए अलंकारों का प्रचुर प्रयोग तो किया है किन्तु अलंकृत शैली के मोह ने उनके कथाकार को कहीं भी शृंखलाबद्ध नहीं किया है । भगवतीबाबू का प्रमुख उद्देश्य कथा कहने का है, किसी अनिंद्य सुन्दरी का रूप-वर्णन उनको इतना भावुक नहीं बनाता कि वह उसके रूप-सागर में गोते लगाते अलंकारों से बोझिल वर्णन के द्वारा अपनी कथा की गति को अवरुद्ध कर दें अथवा उसे सामान्य पाठक की सहज कल्पना और आस्वादन से दूर पहुँचा दें । अपितु कभी- कभी तो उनकी कृतियों में विशिष्ट भावप्रवण एवं शृंगारिक क्षणों में भी अलंकारों और काव्यात्मक सौष्ठव से चमत्कृत कर देनेवाली शैली का अभाव देखकर आश्चर्य होता है, जब कि प्राय: ऐसी स्थितियों में भावुक साहित्यकार अपनी सीमा की उपेक्षा कर विशिष्ट प्रसंगों को अनावश्यक विस्तार देकर उन्हें बोझिल एवं क्लिष्ट बना देते हैं । वर्मा जी ने अलंकारों के यथोचित प्रयोग से भाषा को अपेक्षित प्रवाह एवं प्रभाव प्रदान किया है । इससे उनकी शैली का वाह्य रूप अपने स्वाभाविक निखार एवं प्रकृत स्वरूप में प्रस्तुत हुआ है ।

शैली का आन्तरिक रूप :- काव्य के अन्तर्गत भाव पक्ष की भाँति शैली के आन्तरिक रूप के अन्तर्गत हृदय पक्ष प्रधान रहता है, इसमें पात्रों के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व एवं हार्दिक भाव-परिवर्तन को उद्घाटित या रूपायित करने वाले प्रसंगों को रखा जा सकता है । जीवन के सुखात्मक एवं दु:खात्मक अवसरों का जीवंत चित्र प्रस्तुत करने के लिए साहित्यकार के लिए अपनी शैली में यथोचित उतार-चढ़ाव लाना अनिवार्य हो जाता है, इसीलिए हृदय पक्ष का चित्रण करते समय साहित्यकार की शैली विविध रूप धारण करती है । वर्मा जी के उपन्यासों में मनोविश्लेषण अथवा पात्रों के मानसिक संघर्ष को व्यक्त करने की प्रवृत्ति प्राय: स्वल्प मात्रा में मिलती है तथापि जहाँ उनकी लेखनी ऐसी स्थितियों के अंकन के लिए थमी

---

1- चित्रलेखा- पृ० 39

2- सीधी सच्ची बातें- पृ० 437

है वहाँ स्थित्यानुसार शैली ओज, माधुर्य और प्रसाद आदि गुणों से ओतप्रोत अत्यंत प्रभावशाली बन गई है। यहाँ हम विभिन्न अवसरों पर वर्मा जी की शैली के विविध रूपों की चर्चा करेंगे।

1- मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के भाव-चित्र :- वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में जहाँ कहीं पात्रों की गतिशीलता के मूल में छिपी मानसिक उथल-पुथल को अनावृत किया है वहाँ उनकी शैली अत्यंत प्रभावोत्पादक, मार्मिक एवं चित्ताकर्षक हो गई है। विचाररत नारी-पुरुषों के हृदयगत मनोमंथन का चित्र उन्होंने बड़ी निपुणता से प्रस्तुत किया है। बीजगुप्त ने चित्रलेखा को ही अपना सर्वस्व मान लिया था, किन्तु चित्रलेखा उसे छोड़कर चली गयी- यह कहकर कि बीजगुप्त को विवाह करके अपना गार्हस्थ-धर्म निबाहना चाहिए। परन्तु बीजगुप्त की मन:स्थिति कुछ और ही थी -

"मेरा कर्तव्य क्या है ? मैं पैदा हुआ हूँ कर्म करने के लिए। मेरा कर्तव्य है कि मैं गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करूँ, मेरा कर्तव्य है कि मैं अपने वंश की वृद्धि करूँ। इसके लिए मुझे आवश्यक है कि मैं विवाह करूँ। क्या विधि का यही विधान है ? सम्भवत: चित्रलेखा मेरे जीवन से इसीलिए चली गयी है। विवाह करूँ- एक बार गृहस्थी का अनुभव करूँ। और विवाह विवाह के लिए योग्य पात्री भी है। यशोधरा- यशोधरा। सौन्दर्य में चित्रलेखा से यशोधरा किसी अंश में कम नहीं है। यशोधरा रत्न है - एक पवित्र प्रतिमा है। क्या यशोधरा से विवाह करना ही पड़ेगा ? स्त्रियोचित सभी गुण यशोधरा में विद्यमान हैं ; फिर यशोधरा ही सही। पर क्या सम्भव है ? मैं एक बार यशोधरा को अस्वीकार कर चुका हूँ। किस मुख से यशोधरा को मृत्युंजय से माँगूँ। बहुत सम्भव है महा सामन्त मृत्युंजय यशोधरा का पाणि देने से इनकार कर दें।" बीजगुप्त हँसा---" नहीं --- असम्भव ! अब मैं यशोधरा से विवाह की बात नहीं सोच सकता। बहुत विलम्ब हो गया है - बहुत विलम्ब हो गया है। चित्रलेखा - बस चित्रलेखा ही मेरे जीवन में है।"[1]

यह एक ऐसा चित्र है जब व्यक्ति मानसिक द्वन्द्व के पश्चात् किसी निश्चय पर पहुँच जाता है किन्तु कभी-कभी ऐसी स्थिति भी आती है जब मनुष्य किसी निश्चय पर पहुँच कर भी स्थिर चित्त नहीं हो पाता, चारों ओर का परिवेश उसे बार-बार उसी बात पर सोचने

---

1- चित्रलेखा- पृ० 145-46

के लिए विवश कर देता है। दयानाथ अपनी पैतृक सम्पत्ति का उत्तराधिकारी न बनकर कांग्रेस में ही बने रहने का निर्णय तो कर लेता है किन्तु बच्चों की ममता उसके समक्ष प्रश्नचिन्ह उपस्थित कर देती है। भावना और बुद्धि का संघर्ष उसे डाँवाडोल स्थिति में डाले रखता है - 'लेकिन यह प्रश्न ही क्यों ? क्या मैं वास्तव में इन बच्चों का शत्रु हूँ ? पिता होने के नाते क्या यह मेरा उत्तरदायित्व नहीं है कि मैं इन बच्चों के लिए उचित मार्ग निर्धारित करूँ ? मैं इन्हें इस वैभव से दूर कर रहा हूँ, इन्हें मनुष्य बना रहा हूँ, मैं इन्हें विलासिता और पशुता से छुड़ाना चाहता हूँ। क्या इसमें किसी को आपत्ति हो सकती है ?'

दयानाथ के इस तर्क पर किसी ने उसी के अन्दर से फिर प्रहार किया, 'तुम इन्हें विलासिता और पशुता से छुड़ाना चाहते हो -- तुम झूठ बोल रहे हो ? क्या इस वैभव को छोड़ने की बात तुमने स्वयम् कभी सोची है ? अब जब तुम मजबूर हो रहे हो, तुम आत्म-छलना का सहारा ले रहे हो। तुम्हारे बच्चे कार पर चढ़ते हैं, बँगले में रहते हैं, अच्छा पहनते हैं और अच्छा खाते हैं। वे कुँवर कहलाते हैं। वे अपने को साधारण जन-समुदाय से पृथक समझते हैं। फिर तुम किस बल पर कहते हो कि तुम उनको उचित मार्ग पर ले जा रहे हो ?'[1]

वर्मा जी के उपन्यासों में मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के स्थल कम होते हुए भी इतने कम नहीं हैं कि उन्हें उँगली पर गिना जा सके। इसके साथ उनकी शैली इतनी मर्मस्पर्शी, विचार-पूर्ण एवं स्वाभाविक है कि वह पाठकों को प्रभावित किए बिना नहीं रहती। रेखा अपने विश्वप्रख्यात प्रोफेसर पति के साथ विश्वासघात करके पर-पुरुष से शारीरिक सम्बंध कर लेने पर निश्चय करती है कि वह अपने पति से सब कुछ बतलाकर अपने पाप का प्रायश्चित कर डालेगी किन्तु भावना और बुद्धि का संघर्ष उसे किस ओर ले जाता है, उस अवसर की बड़ी ही भावपूर्ण एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति वर्मा जी ने की है।

'कितने भले थे उसके पति, कितना विश्वास था उनका उसके ऊपर। और उनको उसने धोखा दिया। किस तरह वह उनसे अपनी बात कहे, किस तरह वह उनसे क्षमा माँगे? और अपने पति से अपने विश्वासघात की बात कहकर उसे बहुत सम्भव है शान्ति ~~मि~~ मिल भी जाए, लेकिन क्या वह अपने देवता में एक ~~भय~~ भयानक अशान्ति न उत्पन्न ~~करेगी~~ कर देगी ?

---

1- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृष्ठ- 27-28

क्या अपने पाप की ज्वाला में अकेले उसका जलना काफी नहीं है ? प्रभाशंकर को भी अपने पाप की ज्वाला में फोंक देना क्या इससे भी बड़ा पाप न होगा ? और प्रोफेसर को सब-कुछ बतला देने से तो उसका पाप नहीं धुल जाएगा ।

भावना पर बुद्धि विजय पाती चली जा रही थी । उसका कुल है, उसका समाज है, और इस कुल और समाज की मर्यादाएँ हैं । अगर वह प्रोफेसर से कल रात वाली बात बतला दे तो प्रोफेसर न जाने क्या कर डालें । हो सकता है कि एक बहुत बड़ा व्यतिक्रम उत्पन्न हो जाए उनके जीवन पर । आदमी झूठे-सच्चे विश्वासों पर ही तो कायम है, इन विश्वासों को तोड़ने के अर्थ होते हैं, अपने अस्तित्व को ही चुनौती देना ।

नहीं, अपनी बात वह प्रोफेसर को न बतला सकेगी- अपने हित में नहीं, प्रोफेसर के हित में । प्रोफेसर को जरा भी पीड़ा पहुँचे, यह भाव उसके लिए असह्य था, और एक भयानक पीड़ा वह स्वयं प्रोफेसर को पहुँचाए, यह पाप उसके विश्वासघात वाले पाप से भी बड़ा होगा । उसे अपने ही अन्दर प्रायश्चित की ज्वाला में तपना चाहिए, इसमें प्रोफेसर को घसीटना, प्रोफेसर के प्रति अन्याय होगा । अपने इस कलंक को उसे अपने अन्दर एक गहरा भेद बनाकर रखना होगा, हमेशा-हमेशा के लिए । इस भेद को अपने अन्दर किसी कोने में डाल रखना होगा ।[1]

रेखा के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को उपन्यासकार ने प्रसाद गुण सम्पन्न शैली में उद्घाटित करने में अद्भुत सफलता प्राप्त की है । वर्मा जी ने किसी घटना को प्रतिक्रिया के रूप में अपने पात्रों को सोचने-विचारने का अवसर दिया है । ऐसे चिंतन-मनन के क्षणों में कथाकार ने पात्रों में तो प्राण-प्रतिष्ठा कर ही दी है, उनकी लेखन-शैली की गति भी विचारों की तीव्रता के समान त्वरित एवं प्रवहमान हो गयी है । सुख-दुःख में झूलते उपन्यास के पात्रों की आभ्यन्तरिक वृत्तियों के सूक्ष्म अंकन में उपन्यासकार की मेधा ने लेखनी की भरपूर सहायता की है । जगतप्रकाश के प्रति अटूट ममता रखनेवाली बहन अनुराधा का देहावसान जगतप्रकाश के अन्तस् में कितनी वेदना और निराशा भर देता है, उसे उपन्यासकार ने 'दुःख' शब्द का प्रयोग न करके भी बड़ी मार्मिकता से स्पष्ट कर दिया है -

---

1- रेखा- पृष्ठ-112-113

"केवल एक बन्धन था जगतप्रकाश को बाँधे हुए- और वह बन्धन भी इस अप्रत्याशित-रूप से टूट गया । दुनिया में वह नितान्त अकेला रह गया । इस अकेलेपन को वह कैसे भोग पाएगा ? जगतप्रकाश के पास गीता की वह प्रति थी जो उसे परवेज ने बम्बई में दी थी । उसी में तो भगवान कृष्ण ने कहा था - न शस्त्र मुझे बेध सकते हैं, न आग मुझे जला सकती है, यानी मनुष्य कभी मरता नहीं । जो बिंधा था और जो जला था वह अनुराधा नहीं थी-अनुराधा का शरीर था । अनुराधा स्वयं नहीं मरी, वह जीवित है कहीं किसी रूप में । लेकिन वह सशरीर अनुराधा, जो उसकी बहन थी, जिसका जगतप्रकाश को पूरा सहारा था, वह तो चली गई । दुनिया की इस उथल-पुथल ने उसके एक-मात्र सहारे को उससे छीन लिया, उसने उसका एकमात्र बन्धन काट दिया । लेकिन यह सब क्यों हुआ ?"[1]

उपन्यासकार के द्वारा जगतप्रकाश की आन्तरिक व्यथा की इस व्याख्या के पश्चात् जगतप्रकाश का एक वाक्य उसकी निराशा को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त है -"अब क्या होगा सुमेर ? दीदी तो चली गई और दीदी के साथ-साथ इस गाँव का मेरे साथ रिश्ता भी गया ।"[2] इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि वर्मा जी को विभिन्न अवसरों पर मनुष्य के मन में उठती भावनाओं का तो पूर्ण ज्ञान है ही, उसे अभिव्यक्ति देने में उनकी शैली पूर्णरूपेण सफल सिद्ध हुई है ।

वर्मा जी की भावात्मक शैली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें भाव और शैली का अनुपम समन्वय दृष्टिगत होता है भावों की कोमलता और उग्रता के अनुरूप ही शैली में माधुर्य और ओज या उग्रता का समावेश सहज रूप से हो जाता है । शृंगार की दो विभिन्न स्थितियों में शैली का अंतर दर्शनीय है ।

"चित्रलेखा की अधखुली आँखों में मतवालापन था और उसके अरुण कपोलों में उल्लास था । यौवन की उमंग में सौन्दर्य किलोलें कर रहा था, आलिंगन के पाश में वासना हँस रही थी । चित्रलेखा ने मदिरा का एक घूँट पिया- इसके बाद वह मुस्करायी । एक क्षण के लिए उसके अधरों ने बीजगुप्त के अधरों से मौन भाषा में कुछ बात कही ।"[3]

---

1- सीधी सच्ची बातें- पृ0 504

2- ,, पृ0 505

3- चित्रलेखा- पृ0 9

तथा

"कुमारगिरि ने चित्रलेखा का हाथ पकड़ लिया - चित्रलेखा सिर से पैर तक सिहर उठी । उसे ऐसा मालूम हुआ, मानो उसके हाथों पर जलते हुए लोहे के कड़े पहना दिये गये हैं। योगी का सारा शरीर जल रहा था - 'साकार को अपनाने का प्रयोग कर रहा हूँ नर्तकी । इस साकार की भावना को तुमने मेरे हृदय में जाग्रत किया है, इसलिए तुम्हें मेरे इस प्रयोग में साथ देना पड़ेगा - नहीं लक्ष्य, बनना पड़ेगा । समझीं ।"[1]

दोनों ही स्थलों पर वासना है, वासना को धारण करने वाले दो पक्ष हैं किन्तु केवल चित्रलेखा की इच्छा-अनिच्छा से स्थिति में जितना अंतर पड़ा है- उसी परिमाण में शैली का स्वरूप भी परिवर्तित हो गया है ।

इसी प्रकार एक अल्पशिक्षित स्त्री की उत्तेजना और ईर्ष्या को व्यक्त करने के लिए वर्मा जी ने उग्र एवं कठोर शब्दों का प्रयोग करके उसके भावों की सजीव अभिव्यक्ति की है -

"संतो की मुद्रा अनायास ही बदल गई ,"उस चुड़ैल के साथ में जाऊँगी, मैं जाऊँगी? संतो यह कहते-कहते उत्तेजित हो उठी ।"उसे इनके साथ गुलछर्रे उड़ाते देखूँ और उसके साथ हँसूँ-बोलूँ ? फूहड़ और बेशरम कहीं की । जी होता है उसका मुँह नोच लूँ ।"[2]

विभिन्न मानसिक स्थितियों में पड़े मानवीय-पात्रों का चित्रण करते समय वर्मा जी की लेखन-शैली अवसरानुकूल रूप धारण करके पाठकों के लिए सहज विश्वसनीय एवं रोचक बन गई है - इतना निस्संदेह कहा जा सकता है । इसके साथ ही वर्मा जी ने मानव-जीवन में आनेवाली विभिन्न परिस्थितियों एवं वातावरण के समुपस्थितीकरण के लिए अभिव्यक्ति की विभिन्न शैलियों का भी प्रयोग किया है यथा प्रलाप, आवेश, भाषण एवं व्यंग्य आदि । इनके सम्बंध में कुछ चर्चा कर लेना भी समीचीन प्रतीत होता है ।

प्रलाप शैली :- भावना के प्रबल प्रवाह में जब व्यक्ति अपने कर्मों का लेखा-जोखा करने लगता है, उस समय उसका पश्चाताप, अपने ऊपर लगाये गये लांछन और स्वयं अपनी प्रताड़ना प्रलाप का रूप धारण कर लेती है । भावना के इस उद्दाम वेग के चित्रण के लिए वर्मा जी

---

1- चित्रलेखा- पृ० 127-28

2- भूले बिसरे चित्र- पृ० 285

ने प्रलाप शैली का आश्रय लिया है । `टेढ़े मेढ़े रास्ते ` से एक उद्धरण द्रष्टव्य है, जिसमें रामनाथ अंतत: बिल्कुल अकेले रहकर अपने को ही धिक्कारने लगते है -

`सब कुछ समाप्त हो गया - कोई नहीं-- सब गए । अकेले तुम प्रेत की तरह मौजूद हो रामनाथ । प्रभाव को मृत्यु से रोका जा सकता था - अगर जेल में ~~जेल में~~ जाकर तुम उससे न मिले होते । उमा को रुपये देकर तुम बचा सकते थे -- लेकिन तुमने उसे अन्धकार और निराशा में ढकेल कर हमेशा के लिए उसे अपना शत्रु बना लिया । और दया-- वह तुम्हारे पास आया, अपनी पत्नी और बच्चों के साथ । लेकिन तुमने उसे निकाल बाहर किया । अपने ही हाथों तुमने अपना विनाश किया । तुम्हारी समर्थता- - तुम्हारी अहम्मन्यता-- यह सब निर्माण नहीं कर सके-- इन्होंने भयानक विनाश किया है-- तुम अधम हो-- तुम पापी हो ।`

रामनाथ का स्वर तेज होता गया -`तुम्हारा छोटा भाई-- तुम पर विश्वास करने वाला, तुम्हारा भरोसा करने वाला, तुम्हें देवता की तरह पूजने वाला-- पागल हो गया है । अब क्या करोगे, किससे बोलोगे ? किस पर शासन करोगे ? सब गए-- हमेशा के लिए गए । दुनिया में बिना तुम्हारी सहायता के लोगों का काम चल सकता है । तुम समर्थ नहीं हो, तुम जीवन में जीते नहीं, तुम अपने जीवन में भयानक रूप से हारे हो ।`[1]

ओज गुण सम्पन्न इस उद्धरण में उपन्यासकार ने रामनाथ की क्रोधपूर्ण वाणी में भी उनकी विवशता, ग्लानि, वेदना और असहायता को साकार कर दिया है । एक ऐसा व्यक्ति जो सदैव अपने आपको कुल-संरक्षक, सर्वशक्तिमान एवं सामर्थ्यवान समझता रहा, स्वयं को पापी,अधम एवं विनाश करनेवाला कहता है तो उसकी पीड़ा और पश्चाताप का अनुमान सहज ही हो जाता है । प्रलाप शैली के द्वारा उसकी अभिव्यंजना अधिक प्रभावशाली हो सकी है ।

कुछ ऐसे स्थलों पर जहाँ उपन्यासकार ने पात्र विशेष की दयाशीलता,करुणा एवं विनय को प्रकट किया है, वहाँ उनकी शैली में कोमलता, माधुर्य एवं हृदय को द्रवित कर देने वाली शब्दावली की प्रचुरता मिलती है । चित्रलेखा अपने पाप का प्रायश्चित करने के लिए जिन शब्दों में बीजगुप्त से विनती करती है, उससे उसके मन की कचोट,व्यथा एवं तिरस्कृति

---

1- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृष्ठ-499-500

जैसे टपकी पड़ती है । थोड़े से शब्दों में अपार अभिव्यंजना की शक्ति समाहित हो गयी है-

" नहीं मेरे देवता । मेरे शरीर को आप स्पर्श न करें । मैं अपवित्र हूँ, पतिता हूँ, पापिनी हूँ मेरे देवता । चलिए, आप मेरे भवन को चलिए, मुझे आप पवित्र कीजिए--- अपने शाप की अग्नि में तपाकर आप मुझे पवित्र कीजिए ।"[1]

इसी प्रकार रेखा के पापाचार से पीड़ित हो प्रोफेसर प्रभाशंकर रेखा को दोषी न ठहराकर स्वयं को दोषी पाते हैं एवं अपने मन की बात कहकर अपना मन हल्का करना चाहते हैं -

"रेखा, तुम्हारे कारण मैंने बहुत सहा है, लेकिन मैं तुम्हें दोष नहीं देता । मेरे कारण शायद तुमने इससे भी अधिक सहा है । तुमसे विवाह करके मैंने तुम्हारे प्रति बहुत अन्याय किया, शायद एक तरह से मैंने तुम्हारे जीवन को नष्ट कर दिया ।"---- नहीं रेखा, मुझे अपनी बात कह लेने दो, इससे मेरे पाप की कालिमा शायद कुछ धुल सके । मैंने समझा था कि तुम मुझसे प्रेम करती हो, लेकिन वह मेरा भ्रम था । तुम मेरी पूजा करती थीं, मुझ पर भक्ति थी तुम्हारी, वह प्रेम नहीं था । जहाँ तक मेरा सवाल है-शायद पुरुष का प्रेम वासना से ओतप्रोत होता है । मैं अपनी पाशविक भावना में अन्धा हो गया था और मेरी उस पशुता का दण्ड मिल रहा है मुझे । इस दण्ड को मुझे चुपचाप स्वीकार करना चाहिए । तुमने मुझ पर विश्वास किया, तुमने मुझे अपनी ममता दी, अपनी संवेदना दी। लेकिन मैंने इस सबका दुरुपयोग किया । मैं यह भूल गया था कि तुम्हें मुझसे प्रेम नहीं है, प्रेम हो भी नहीं सकता था । आत्मा के धर्म के साथ शरीर का भी तो कोई धर्म है ।अपने शरीर की भूख को तो मैं जानता था, लेकिन तुम्हारे शरीर की भी कोई भूख हो सकती है, यह मैं भूल गया था ।"[2]

प्रभाशंकर के इन शब्दों में उनके हृदय की एक-एक पर्त खुलकर सामने आ जाती है और एक विद्वान प्रोफेसर के रूप में उनके विचारों को अपेक्षित गरिमा एवं तर्कशीलता के साथ प्रस्तुत करने में उपन्यासकार को पर्याप्त सफलता मिली है । प्रलाप शैली की यही विशेषता है कि उसमें पात्र उचित-अनुचित का विचार किए बिना अपने हृदय की प्रत्येक ग्रंथि को खोलकर रख दे और इस कार्य में भगवतीबाबू की लेखनी पूर्णरूपेण सफल हुई है, इसमें सन्देह नहीं है । सामर्थ्य और सीमा में मेजर नाहरसिंह के विचारों को व्यक्त करते

---

1- चित्रलेखा- पृ० 174

2- रेखा- पृ० 346

समय उपन्यासकार ने कई स्थलों पर प्रलाप शैली का प्रयोग किया है। विशेष उत्तेजना या वेदना में भरकर नाहरसिंह अपना आपा खो देते हैं और उनके विचार श्रोताओं को बहके-बहके से लगते हैं किन्तु उनमें नाहरसिंह के हृदय की वास्तविक अनुभूति व्यक्त हो जाती है। इस संदर्भ में आठवें परिच्छेद का प्रथम भाग विशेष द्रष्टव्य है। मेजर नाहरसिंह की मानसिक आशंका, छटपटाहट, उलझन एवं व्यथा को स्पष्ट करने के लिए प्रलाप शैली ने कथाकार की विशेष सहायता की है।

आवेश शैली :- व्यवस्था, शासन, वर्ग एवं व्यक्ति के प्रति किसी पात्र का रोष व्यक्त करने के लिए वर्मा जी ने आवेश शैली का प्रयोग किया है। ऐसे स्थलों पर उनकी भाषा प्राय: ओज गुण से सम्पृक्त दिखती है और एक-एक शब्द मानों अपने लक्ष्य पर कठोर प्रहार करता प्रतीत होता है। 'सामर्थ्य और सीमा' में हिन्दू धर्म की आलोचना करनेवाले ज्ञानेश्वर राव के प्रति मेजर नाहरसिंह का आक्रोश बड़े ही आवेशयुक्त ढंग से व्यक्त हुआ है - 'एडीटर साहब। तुम आत्मद्रोही हो। तुम्हारे आसपास जो लोग हैं वे सब तुम्हारी घृणा के पात्र हैं। तुम्हारे जो अपने हैं, तुम उनके हो ही नहीं सकते। तुम्हारे बीबी-बच्चे, तुम्हारे नाते-रिश्तेदार, तुम्हारे परिवार और कुटुम्ब वाले, तुम इन सबसे घृणा करोगे। तुम अपनी जाति वालों से घृणा करोगे, तुम अपने धर्म वालों से घृणा करोगे, तुम अपने देश वालों से घृणा करोगे। और दुर्भाग्य यह है कि लोग तुम्हें उदार समझेंगे, तुम्हारा आदर और मान करेंगे। तुम्हारे ऐसे आदमियों को तो गोली मार देनी चाहिए।'[1]

समाज को दूषित करने वाले अर्थ-पिशाचों के प्रति अपना रोष व्यक्त करने के लिए रमेश का एक-एक शब्द आग उगलता प्रतीत होता है, उसके उद्गारों को तीक्ष्णता प्रदान करने के लिए, वर्मा जी ने आवेश शैली का समुचित प्रयोग किया है - 'आप मेरे अधिकार को पूछते हैं, तो मैं आपको बतला दूँ कि मैं मनुष्य हूँ और प्रत्येक नर-पशु को, जो अकारण ही निर्बल मनुष्य पर आघात करे, दण्ड देना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। समझे! और सरोज के सम्बंध में मुझे यह कहना है कि उसकी वेश्या-वृत्ति का कारण तुम- जैसे अर्थ-पिशाचों के स्वार्थ तथा बर्बरता में मिलेगा, जो केवल जीवित रहने के लिए आदमी को अपना शरीर तक बेच देने को विवश करते हैं। यदि तुम स्वयं अपने को देखो, तो मालूम होगा कि तुम

---

1- सामर्थ्य और सीमा- पृष्ठ-143

सरोज से कहीं अधिक पतित हो । सरोज ने धन के लिए केवल अपना शरीर बेचा है, किन्तु तुमने तो अपनी आत्मा तक बेच दी है । मनुष्य-जाति को तो चाहिए कि वह तुम्हारा अपमान करे, तुम्हें ठुकराए ।'[1]

प्रस्तुत उद्धरण में पहले 'आप' एवं बाद में 'तुम' की ओर ध्यान आकर्षित हो जाना स्वाभाविक है । रमेश पहले तो अपने से वयस्क बाँकेलाल को 'आप' कहकर सम्बोधित करता है किन्तु आवेश के कारण उसमें शिष्टाचार का विवेक समाप्त हो जाता है और वह 'तुम' कहकर अपनी घृणा एवं क्रोधानुभूति को अधिक गहनता प्रदान करना चाहता है । इसी प्रकार चित्रलेखा कुमारगिरि की मदान्ध वासना से कातर होकर उसकी प्रताड़ना करती है, उसका एक-एक वाक्य कुमारगिरि के आडम्बरयुक्त सन्यासी वेश को निर्ममता के साथ अनावृत्त करता जाता है -'वासना के कीड़े । तुम क्या जानो ? तुम अपने लिए जीवित हो, ममत्व ही तुम्हारा केन्द्र है -- तुम प्रेम करना क्या जानो ? प्रेम बलिदान है, आत्म त्याग है, ममत्व का विस्मरण है । तुम्हारी तपस्या और तुम्हारा ज्ञान--- तुम्हारी साधना और तुम्हारी आराधना-- यह सब भ्रम है, सत्य से कोसों दूर है । तुम अपनी तुष्टि के लिए गृहस्थ-आश्रम की बाधाओं से, कायरतापूर्वक सन्यासी का ढोंग लेकर विश्व को धोखा देते हुए मुख मोड़ सकते हो -- तुम अपनी वासना को तुष्ट करने के लिए मुझे धोखा दे सकते हो--और फिर भी तुम प्रेम की दुहाई देते हो ।'[2]

किसी व्यक्ति के प्रति व्यक्त किए गये रोषपूर्ण उद्गारों में आक्रोशात्मक विशेषणों के कारण, आवेश एवं उत्तेजना अधिक दिखती है किन्तु जहाँ भी किसी वर्ग, धर्म एवं सामाजिक व्यवस्था के प्रति वर्मा जी ने अपना विरोध प्रकट किया है वहाँ आवेश की तीक्ष्णता न होते हुए भी प्रभावान्विति अत्यधिक गहन है और उपन्यासकार की तीव्र अनुभूक्ति को अभिव्यंजित करने में पूर्ण सक्षम भी । इस संदर्भ में मात्र एक उदाहरण देख लेना पर्याप्त होगा -'देश के उद्योगपति-ये सब-के-सब गद्दार हैं, शोषक हैं । उनका एकमात्र उद्देश्य है लम्बा मुनाफा । वह जनता का शोषण करते हैं ऊँची कीमतों से, मजदूरों का शोषण करते हैं कम तनख्वाह देकर और सरकार का शोषण करते हैं टैक्स को न अदा करके । देश के शत्रु देश के अन्दर है, देश के बाहर नहीं हैं ।'[3]

---

1- तीन वर्ष- पृ० 211

2- चित्रलेखा- पृ० 160

3- प्रश्न और मरीचिका- पृ० 454

आवेश की स्थिति में विचारों कीजिस घनीभूत अवस्था का होना आवश्यक है वह तोवर्मा जी के उपन्यासों में मिलती ही है, साथ ही तीक्ष्ण एवं कठोर शब्दावली ने उसकी अभिव्यक्ति में विशेष सहायता की है।

भाषण एवं सम्बोधन शैली :- भाषण एवं सम्बोधन शैली में आवेश एवं प्रार्थना का समन्वय होता है, ऐसा माना गया है किन्तु कभी-कभी स्थिति के यथातथ्य प्रस्तुतीकरण के लिए भी भाषण का प्रयोग किया जाता है। वर्मा जी ने भाषण शैली का अत्यल्प मात्रा में प्रयोग किया है क्योंकि भाषण को उसके स्वाभाविक रूप में रखने से उपन्यास की गति और रोचकता में बाधा आने का भय रहता है। 'अपने खिलौने' में उपन्यास के एक प्रमुख पात्र वीरेश्वरप्रताप के चित्रों की प्रदर्शनी के अवसर पर वर्मा जी ने गृहमंत्री द्वारा उद्घाटन-भाषण करवाया है किन्तु यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि यह भाषण न तो किसी उद्बोधन के लिए है और न ही किसी निवेदन हेतु। इस भाषण को रखने का एकमात्र उद्देश्य मंत्रियों की भाषणकला पर व्यंग्य करना है। इस भाषण के द्वारा वर्मा जी ने ऐसे मंत्रियों पर व्यंग्य किया है जो अपने व्यस्त कार्यक्रम में भी उद्घाटन-समारोहों की अवहेलना नहीं कर पाते और प्रत्येक विषय पर अपने ज्ञान का सिक्का श्रोताओं पर जमाने का असफल प्रयास करते हैं। गृहमंत्री के भाषण का पूर्वांश प्रस्तुत है -

"देवियों और सज्जनों। मुझे इस बात का संतोष है कि हमारे देश की कला दिनों-दिन उन्नति कर रही है और देश में कलाकारों की संख्या प्रतिदिन बढ़ रही है। ये कलाकार आपको ग्रामों में मिलेंगे, नगरों में मिलेंगे, झोपड़ियों में मिलेंगे, महलों में मिलेंगे- गरज यह कि यथेष्ट संख्या में कलाकार इस विशाल भारतवर्ष में मौजूद हैं। ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका, रूस, चीन, जापान, हर जगह हमारे देश के कलाकार धूम मचाए हुए हैं। हमारी सरकार प्राय: रोज ही कलाकारों के शिष्ट मण्डल विदेशों में भेजा करती है। कला और संस्कृति, यही विश्व के विभिन्न देशों को एकता के सूत्र में बाँध सकती है। कला देश का जीवन है, कला देश का प्राण है। हमारे देश में अनादिकाल से कलाकार होते रहे हैं। अनन्तकाल तक कलाकार होते रहे हैं। कला पर हमारे यहाँ न जाने कितने ग्रंथ लिखे गए हैं। न जाने कितने वर्गीकरण किए गए हैं। आप सब लोग शक्ल से शिक्षित कला-प्रेमी दिखते हैं और इसलिए मैं समझता हूँ कि आप लोगों ने वे ग्रंथ अवश्य पढ़े होंगे और उन वर्गीकरणों का परिचय प्राप्त कर लिया होगा। यदि आप लोगों ने वे ग्रंथ अभी तक नहीं पढ़े हैं, तो अवश्य पढ़िए। सरकार ने अनगिनती पुस्तकालय खोलकर आपको उन पुस्तकों के पढ़ने की

सुविधा प्रदान कर दी है। यह मत समझिए कि देश की उन्नति सिर्फ खेती करने या मशीन चलाने में ही है। यह खेती, यह मशीन-- यह तो मानव सभ्यता का केवल शरीर तत्व है। मानव सभ्यता का प्राण तत्व कला में है, केवल कला में। हमारी सरकार का भविष्य में यह प्रयत्न होगा कि देश का बच्चा-बच्चा कलाकार बन जाय।"[1]

प्रस्तुत उद्धरण में आवेश एवं प्रार्थना शैली का सर्वथा अभाव है, केवल विवरणात्मक शैली में अपने विचारों को प्रकट किया गया है। एक अन्य स्थल पर भाषण-शैली का एक उद्धरण द्रष्टव्य है। उमानाथ अपने समक्ष उपस्थित साहित्यकार-समुदाय को सम्बोधित करते हुए कहता है-" मैंने हिन्दी के साहित्यिकों की बातें सुनीं, मैंने इन साहित्यिकों के विचारों पर-- यदि उन्हें विचार कहा जा सकता है -- गौर किया, और मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि हिन्दी के साहित्यिकों का जमाव पागलों का जमाव है, जिसमें हरेक आदमी अपनी कहता है, बेमतलब और असंगत कहता है, बिना सोचे-समझे कहता है और गलत कहता है। कला की पुरानी रूढ़ियों को हम प्राणों के समान अपनाए हुए हैं, उन्हीं पर हम चल रहे हैं, वही हमारे लिए सत्य और नित्य हैं। हमने बुद्धि रखते हुए भी उस बुद्धि से काम लेने से इन्कार कर दिया ; हमने न सोचा, न समझा। हम कल्पना के इन्द्रजाल में विचरण कर रहे हैं--- आज तक हमारे देश में सत्-साहित्य का सृजन नहीं हुआ, हो भी नहीं सकता था। हमारे यहाँ साहित्य की आवश्यकताओं को किसी ने समझा तक नहीं, हम लोग गलत आदर्श लेकर आगे बढ़े। जीवन के प्रमुख संघर्ष की ओर हमारी एक प्रकार की भयानक उपेक्षा रही, अस्तित्व की सार्थकता पर हमने ध्यान नहीं दिया। और इसका नतीजा यह हुआ कि हिन्दुस्तान एक भी वास्तविक कलाकार को जन्म नहीं दे सका।"[2]

उमानाथ के इस कथन में आवेश एवं निवेदन शैली का समावेश परोक्षरूप से अवश्य हुआ है किन्तु इसमें विश्लेषण की प्रवृत्ति मुखर हो उठी है।

'सीधी-सच्ची बातें' में भी अँगनू साह गाँधी जी के 'करो या मरो' के संदेश से प्रभावित होकर बड़ा उत्तेजनात्मक एवं आवेशपूर्ण भाषण देते हैं, किन्तु उसमें भाषण की गरिमा का नितांत अभाव है -"भाइयों। समय आ गया है इस अंग्रेजी सरकार को उखाड़ फेंको। ~~अबअब~~ जापानी फौजें आसाम में घुस आई हैं और बंगाल की तरफ बढ़ रही हैं-

---

1- अपने खिलौने- पृ० 40-41
2- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ० 244

उसके बाद बिहार, और फिर यहाँ। अंग्रेज हार रहे हैं और भाग रहे हैं। मौका है, तहसील का खजाना लूट लो, पुलिस -चौकी में आग लगा दो- बोलो महात्मा गाँधी की जय।"[1]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वर्मा जी के उपन्यासों में भाषण शैली और सम्बोधन शैली का लगभग अभाव मिलता है। कुछ स्थलों पर भाषण एवं व्याख्यान का समावेश हुआ है किन्तु उनका वास्तविक स्वरूप उभरकर स्पष्ट नहीं हो सका है क्योंकि वर्मा जी ने विशेष उद्देश्य के कारण इन भाषणों की अवतारणा की है जिसके कारण भाषण शैली के विशिष्ट गुणों का इनमें समुचित समावेश नहीं हो सका है।

व्यंग्यात्मक शैली :- वर्मा जी व्यंग्य के सिद्धहस्त कलाकार हैं। व्यंग्य के लिए जिस वाग्वैदग्ध्य की अपेक्षा होती है, वह वर्मा जी में पूर्णतया विद्यमान है। इस प्रसंग में एक प्रसिद्ध आलोचक का कथन स्मरणीय है- "टेढ़े मेढ़े रास्ते" में कवियों तथा लेखकों के जो व्यंग्य चित्र दिये गये हैं उनमें बड़ी स्वाभाविकता है। इनके चित्रण को देखकर ऐसा लगता है कि यदि वर्मा जी व्यंग्य का अधिकाधिक उपयोग करें तो उनकी कृतियाँ और भी मनोरंजक हो जायँ। व्यंग्य के लिए एक विशेष प्रकार की प्रतिभा अपेक्षित है और वह प्रतिभा वर्मा जी में पर्याप्त मात्रा में है।"[2] वर्मा जी के प्राय: सभी उपन्यासों में व्यंग्य शैली का प्रचुर प्रयोग मिलता है, यहाँ तक कि व्यंग्य शैली की अभिव्यंजना-शक्ति से प्रभावित होकर वर्मा जी ने दो उपन्यासों का सृजन ही कर डाला है। 'अपने खिलौने' में हास्य-व्यंग्य का मिला-जुला रूप तथाकथित उच्च वर्ग के जीवन के प्रति पाठकों के मन में मनोरंजन एवं वितृष्णा का सृजन करता है तो 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' का व्यंग्य घटनाओं और चरित्रों के क्रिया-कलाप के बीच से प्रस्फुटित होकर पाठकों को अभिभूत कर लेता है।

वर्मा जी के व्यंग्य प्राय: सामाजिक ही होते हैं और उनमें तीक्ष्ण प्रहार करने की अपार क्षमता निहित होती है किन्तु कहीं-कहीं उन्होंने व्यक्तिगत वार्तालाप में भी व्यंग्य शैली का अत्यन्त विदग्धतापूर्ण प्रयोग किया है। योगी कुमारगिरि चित्रलेखा के साथ होने के कारण बीजगुप्त से अपनी कुटी में रात्रि-विश्राम के लिए असहमति व्यक्त करता है। इस पर बीजगुप्त का व्यंग्यात्मक उत्तर कुमारगिरि को एक ही बार में निस्तेज

---

1- हे सीधी सच्ची बातें- पृ० 495-96

2- हिन्दी उपन्यास- डा० शिवनारायण श्रीवास्तव-पृ० 240

कर देता है -'भगवन् , मुझे यह तो ज्ञात है कि यह एक योगी की कुटी है, पर यह नहीं सोचा था कि एक इन्द्रियजित योगी को केवल रात्रि भर के लिए एक स्त्री को, और उस स्त्री को, जो एक पुरुष के साथ है, आश्रय देने में संकोच होगा ।'[1] बीजगुप्त के इस कथन में गम्भीर व्यंग्य छिपा है जो योगी की चरित्र-मूर्ति को छिन्न-भिन्न कर देता है । बीजगुप्त द्वारा किये गये इस व्यंग्य में संयत एवं शांत स्वर के अनुकूल उग्र शब्दावली का प्रयोग नहीं हुआ किन्तु जहाँ पात्र क्रोध में भरकर किसी पर व्यंग्य करते हैं वहाँ व्यंग्य के साथ आवेशपूर्ण शैली का समन्वय भाषा में अत्यधिक तीक्ष्णता एवं पैनापन ला देता है । चमेली रामेश्वर द्वारा रँगे हाथों पकड़ ली जाने पर स्वयं को लांछित अनुभव करती है और अपने पतन के कारण शीतलप्रसाद पर व्यंग्य प्रहार करती है- ' तुम प्रेम की बात मत करो -- वासना के कीड़े । तुम क्या जानो कि प्रेम क्या होता है ; तुम जो शरीर को अपने रुपयों से खरीदते हो । तुम खरीद सकते हो, क्योंकि तुम्हारे पास रुपया है; पर यह रुपया पाने के लिए तुम अपनी आत्मा तक धन के पिशाच के हाथ बेच चुके हो । तुम घृणित हो, तुम नीच हो, तुम शैतान हो ।'[2] यहाँ अर्थ-दानवों पर अपना रोष व्यक्त करने के लिए वर्मा जी ने कठोरतम व्यंग्य शैली का प्रयोग किया है किन्तु हास्य में किए गए व्यंग्य में वर्मा जी की विनोदप्रियता सहज ही भाषा-शैली का रूप भी परिवर्तित कर देती है । हास्य-युक्त व्यंग्य का एक नमूना द्रष्टव्य है जो जख्मी की शारीरिक विशेषताओं को उजागर कर देता है । दिलवरकिशन जख्मी, जो एक शायर हैं, को देखकर एक फिल्म कम्पनी का प्रोप्राइटर कहता है-' और यह- जोकर का तो कोई रोल नहीं था अभी तक-- फिर इनको क्यों ले आए ? और अगर जोकर होना ही है, तो मोटा-सा आदमी होना चाहिए, इनको देखकर तो हँसी आने की जगह रोना आ जाएगा ।'[3] व्यक्ति-विशेष के प्रति किए गये वर्मा जी के व्यंग्य प्रत्यक्ष एवं मर्म पर प्रहार करने वाले होते हैं ।

इसी प्रकार सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियों पर व्यंग्य करते समय भी वर्मा जी की शैली प्राय: प्रत्यक्ष एवं प्रहारात्मक ही रही है, ऐसे स्थलों पर उन्होंने एकदम स्पष्ट शब्दों में सामाजिक विकृतियों का भण्डाफोड़ कर दिया है। हिन्दू धर्म पर व्यंग्य करते हुए

---

1- चित्रलेखा- पृ० 28-29

2- अपने खिलौने- पृ० 232

3- अपने खिलौने- पृ० 164-65

जमील अहमद कहता है -" मजहब सामाजिक है, वह वैयक्तिक है ही नहीं । मन्दिर बनवाना, धर्मशालाएँ खोलना, सदाव्रत बाँटना, ताकि चोरबाजार में, धोखाधड़ी में, मक्कार और फरेब में भगवान हमारी मदद करे, यह इस वैयक्तिक मजहब की कुरूपता है । हिन्दू धर्म की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि उसने धर्म को सामाजिक नहीं माना, उसने उसे वैयक्तिक माना है ।"[1] अन्य अनेक ऐसे स्थल देखे जा सकते हैं जहाँ समाज, व्यवस्था एवं धर्म की विकृतियों पर प्रहार करते समय वर्मा जी की भाषा मानो आग की सशक्त चिनगारियाँ बनकर उन विकृतियों को भस्मीभूत कर देना चाहती है, किन्तु राजनीतिक नेताओं और देश की शासन व्यवस्था पर ~~जब~~ उन्होंने व्यंग्य किया है, वहाँ प्राय: परोक्ष रूप से मीठी चुटकी लेने की प्रवृत्ति पाई जाती है ; वरन् नेताओं, बड़े-बड़े पूँजीपतियों एवं देश के कर्णधारों के स्वयं के कार्य-~~क्ष~~ कलाप और उनके कथन ही मानो व्यंग्य बनकर उनपर छा जाते हैं ~~के व्यंग्य शिल्प का प्रयोग है~~ । 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में व्यंग्य के इसी शिल्प का प्रयोग वर्मा जी ने सर्वत्र किया है । मुख्यमंत्री त्यागमूर्ति फक्कनलाल सत्याग्रही के माध्यम से वर्मा जी ने आजकल के नेताओं पर अत्यन्त संयत एवं मर्मस्पर्शी व्यंग्य किया है, उनका सम्पूर्ण जीवन-परिचय ही इस संदर्भ में ध्यातव्य है । यहाँ उसके दो अंश द्रष्टव्य हैं -

"एलोपैथी चिकित्सा पद्धति का कुछ ऐसा प्रताप कि त्यागमूर्ति इक्यासी वर्ष की अवस्था में भी समस्त प्रदेश का भार अपने कन्धों पर लादे हुए थे । उनकी बत्तीसी जर्मनी में बनी थी -- उन्हें देखकर कोई भी नहीं कह सकता था कि उनके दाँत नकली हैं । दोनों कानों में बटन लगे थे जिनकी सहायता से वह गरीब का सुख-दुख आसानी से सुन सकते थे ।"[2] नेताओं की सत्ताप्रियता पर इससे अधिक मार्मिक प्रहार और क्या हो सकता है । त्यागमूर्ति के त्याग पर एक कटाक्ष देखिए -

"महात्मा गाँधी द्वारा निर्धारित ब्रह्मचर्य-धर्म निभाने के लिए इन्होंने अपनी पत्नी तक को त्याग दिया था और इस महान त्याग से प्रभावित होकर इनके मित्रों एवं अनुयाइयों ने उन्हें त्यागमूर्ति की उपाधि से विभूषित कर दिया था ।"[3] वर्मा जी के व्यक्तिगत स्वभाव के अनुरूप उनके उपन्यासों में व्यंग्य शैली की प्रचुरता मिलती है । परिस्थिति एवं पात्र की

---

1- सीधी सच्ची बातें- पृ० 259

2- सबहिं नचावत राम गोसाईं- पृ० 150-51

3- ,, ,, पृ० 152

मानसिक दशा के अनुसार व्यंग्य शैली का रूप भी परिवर्तित हो जाता है। इसीलिए उनके उपन्यासों में हास्य एवं क्रोध व्यंग्य का यथाअवसर प्रयोग हुआ है और विषय के अनुसार उनकी व्यंग्यात्मक शैली प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों ही रूपों में प्रस्तुत हुई है।

शैली के आन्तरिक रूप के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि वर्मा जी ने भावों की नस पहचानकर, पात्रों के मनोभावों की भाषा पढ़कर अपनी शैली का रूप सँवारा है। ऐसा प्रतीत होता है कि वर्मा जी पात्रों की परिस्थिति में स्वयं को अनुभव करके उसके अनुसार अपनी शैली का निर्माण करते हैं, इसीलिए कथा कहने के अतिरिक्त भावप्रकाशन के लिए जहाँ उनकी लेखनी रुकी है, बड़ी तन्मयता एवं सहजता से उसने पात्रों के मन-प्राणों को खोल कर सबके समक्ष रख दिया है।

शैली का मिश्रित रूप :- शैली के मिश्रित रूप में दृश्य-चित्रण, वस्तु वर्णन एवं रेखाचित्र आदि को रखा जा सकता है। ऐसे स्थलों पर साहित्यकार अपनी सूक्ष्म-भेदिनी दृष्टि एवं वर्णन कौशल का उपयोग करके अपने चित्रण में सजीवता ला देते हैं। विविध वर्णनों को हम दो वर्गों में रख सकते हैं :-

1- रूप चित्रण की शैली :- वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में पात्रों की आकृति, वेशभूषा, स्वभाव एवं क्रियाओं का अत्यन्त रोचक एवंविस्तृत वर्णन किया है। ऐसे स्थलों पर उनकी भाषा-शैली सुगठित, नपी तुली एवं भावपूर्ण हो गयी है। यद्यपि कहीं-कहीं रूप-चित्रण विस्तृत भी हो गये हैं किन्तु उनमें पात्रों के बारे में अधिक से अधिक जानकारी दे देने की प्रवृत्ति सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। 'पतन' में प्रतापसिंह का रेखा चित्र देखिए -

'मनुष्य का पहनावा एक रईस के पहनावे की भाँति था, और वह लखनऊ का ही रहनेवाला मालूम होता था। चूड़ीदार पैजामे पर एक अद्धी की चपकन थी। सिर पर जरी के काम की एक दुपल्ली टोपी थी, और पैरों में कामदार जूते। उसके हाथ में सोने की मूठ की एक छड़ी थी। उसके मस्तक पर चंदन लगा हुआ था, जिससे साफ प्रकट होता था कि वह हिंदू है। उसके मुख पर एक विचित्र गंभीरता थी, जो लोगों में उसके प्रति श्रद्धा तथा भय उत्पन्न करने को यथेष्ट थी।'[1]

---

1- पतन- पृ० 26

यह रेखाचित्र आगे भी लगभग एक पृष्ठ तक चलता है और वह प्रतापसिंह का सम्पूर्ण रूप एकसाथ प्रस्तुत कर देने में सक्षम है। 'भूले बिसरे चित्र' में राजाधरनीधरसिंह का शब्द चित्र इतना विस्तृत न होकर भी उनकी समस्त विशिष्टताओं को बड़ी कुशलता से उपस्थित कर देता है - "राजा धरनीधरनसिंह मझोले कद के मोटे से आदमी थे - रंग आबनूस की तरह काला और आँखें अंगारों की तरह लाल। उस आकृति को और भी भयानक बना देते हैं उनके गलमुच्छे, घने और काले। अपनी आकृति के प्रतिकूल वे सहृदय और हँसमुख स्वभाव के आदमी थे और उन्हें क्रोधित होते किसी ने आज तक नहीं देखा था। उनकी उम्र प्राय: चालीस साल की थी।"[1]

प्रस्तुत चित्र में राजा साहेब का रंग, कद, आकृति आदि के साथ-साथ उनके स्वभाव आदि आन्तरिक गुणों की स्पष्ट कल्पना पाठक ह को हो जाती है। राजा साहब की ही तुलना में रानी का रूप-वर्णन और अधिक अभिव्यंजनात्मक हो गया है - "रानी साहिबा विजयपुर की शक्ल-सूरत अपने पति की शक्ल-सूरत के ठीक विपरीत थी। नाटी-सी, छरहरे बदन की और कठोर आकृति की स्त्री ; आँखें छोटी-छोटी, लेकिन उनमें एक प्रकार की चमक। रंग दूध की तरह सफेद। गाल की हड्डियाँ कुछ उभरी हुई, जिससे यह स्पष्ट हो जाता था कि वह नेपाल की रहनेवाली हैं।"[2]

उपर्युक्त तीनों रेखाचित्रों से स्पष्ट हो जाता है कि वर्मा जी की रूप-चित्रण की शैली चुस्त एवं प्रभावशाली होती है। वह पात्र का एक विशिष्ट चित्र हमारे समक्ष प्रस्तुत कर देती है। इसके साथ ही रूपवती नारियों का रूपांकन करते समय वर्मा जी ने बड़ी आलंकारिक एवं भावपूर्ण शैली का प्रयोग किया है, ऐसे रूप-चित्रण रमणी के शारीरिक सौष्ठव के साथ-साथ उसके आत्मिक गुणों का सौन्दर्य प्रस्तुत करके चित्र में सम्पूर्णता एवं सजीवता भर देते हैं। यशोधरा का रूप-चित्र द्रष्टव्य है -

"यशोधरा सुन्दरी थी, और सुन्दरी भी उच्चकोटि की। उसके शान्त-मुख-मण्डल पर भोलापन अपना आधिपत्य जमाये हुए था, उसकी हँसी की सुरीली झंकार में यौवन से पराजित बचपन ने शरण ली थी। हरिणी की-सी बड़ी-बड़ी आँखों में संकोच

---

1- भूले बिसरे चित्र- पृ० 282

2- " " "

था और उसके रसयुक्त अरुण कपोलों में लज्जा थी । यशोधरा का यौवन सुधा और उल्लास का मिश्रण था, उसमें गर्व की उच्छृंखलता न थी, उसमें लज्जा की शान्ति थी ।'[1]

रूप-चित्रण कीप्रमुख विशेषताओं की ओर इंगित करने का यहाँ हमारा अभिप्रेत नहीं है उसकी शैली पर प्रकाश डालना ही हमें यहाँ अभीष्ट है । इस प्रसंग में विशेष उल्लेखनीय बात यही है कि वर्मा जी रूप-चित्रण में भावपूर्ण शैली का आश्रय ग्रहण करके भी स्वयं भावुकता में बहे नहीं है । इसी कारण उनके शब्द-चित्रों में अनावश्यक विस्तार एवं अलंकरण का समावेश नहीं हुआ है । थोड़े - से शब्दों में पात्र की अधिकतम विशेषताओं की ओर पाठक का ध्यान आकर्षित करने का प्रयत्न वर्मा जी ने किया है और इस कार्य में उनकी व्यंजनात्मक भाषा-शैली ने पूर्णतया सहायता की है ।

2- <u>दृश्य चित्रण की शैली</u> :- वर्मा जी के उपन्यासों में दृश्य-चित्रण के सम्बंध में 'देशकाल एवं वातावरण-सृष्टि ' नामक अध्याय के अन्तर्गत विस्तृत चर्चा की जा चुकी है । वहाँ हम स्पष्ट कर चुके हैं कि स्थानों एवं दृश्यों के इतिवृत्तात्मक चित्रण में वर्मा जी की विशेष रुचि नहीं रही है । जहाँ उन्हें ऐसे चित्रणों की विशेष आवश्यकता प्रतीत हुई है, उन्होंने अवसरानुकूल विश्लेषणात्मक, विवरणात्मक एवं काव्यात्मक शैली में नगरों,स्थानों,वस्तुओं एवं प्रकृति का वर्णन किया है । एकाधिक उद्धरणों के माध्यम से अपनी बात स्पष्ट कर देना हम यहाँ समीचीन समझते हैं ।

शादी से पूर्व रेखा अपने आराध्य पुरुष प्रोफेसर प्रभाशंकर के साथ नैनीताल में गर्मी की छुट्टियाँ बिताने गई है । उसके आन्तरिक उल्लास को प्रतिबिम्बित तथा उसे और अधिक उद्दीप्त करने में नैनीताल का रम्य वातावरण किस प्रकार सहायक हुआ है,इसका वर्णन वर्मा जी ने काव्यात्मक शैली में किया है - ' उस समय सूर्य क्षितिज पर उतरने लगा था । सारे वातावरण में एक प्रकार का उल्लास भरा हुआ था । लोअर माल पर अब दोनों चल रहे थे । नीचे ठीक सामने नैनीताल की झील दिखलाई पड़ रही थी, और झील पर अनगिनत नावें तैर रही थीं । झील के इर्द-गिर्द अनगिनत आदमी चल रहे थे, जैसे कोई उत्सव हो रहा हो वहाँ पर ।'[2]

---

1- चित्रलेखा - पृ0 69

2- रेखा- पृ0 66

इसी प्रकार `चित्रलेखा` में प्रात:कालीन प्रकृति चित्र अत्यधिक अभिव्यंजनापूर्ण एवं सार्थक बन पड़ा है -

`यही सोचते -सोचते बीजगुप्त को कलरव-गान सुनाई दिया । पूर्व दिशा में प्रकाश की प्रथम रश्मि अपना स्वर्णान्चल फैलाये हुए प्रात:कालीन पवन से अठखेलियाँ कर रही थी और तारे पीले पड़कर एक के बाद एक अपना अस्तित्व मिटाते चले जा रहे थे । उसने देखा कि उससे थोड़ी दूर पर यशोधरा खड़ी हुई बेले की अधखिली कली पर से हिमजल के साथ खेल रही है । ----- वह भी बाटिका में सुगन्धित तथा शीतल समीर से अपने तृप्त हृदय को शान्त करने आया ।`[1]

प्रस्तुत प्रकृति-चित्रण अत्यन्त प्रतीकात्मक है । चित्रलेखा के वियोग में चिंतित बीजगुप्त को `कलरव-गान` सुनाई देता है, यशोधरा का उसके जीवन में आगमन ~~कए~~ कलरव-गान के सदृश मधुर है । यशोधरा को बीजगुप्त का सह प्रवाह उषा की `प्रथमरश्मि` के समान आकर्षक एवं आशावान प्रतीत होता है, उसकी समधुर कल्पनाएँ स्वर्णान्चल की भाँति प्रकाशवान एवं विस्तृत हैं । साथ ही बीजगुप्त की हार्दिक निराशा भी पीताभतारागणों की भाँति अस्तित्वहीन होती जा रही है । उपर्युक्त प्रकृति-चित्रण की लाक्षणिक अर्थवत्ता अमुक कथा-प्रसंग में सहज ही स्पष्ट हो जाती है ।

वर्णन की रोचकता एवं जीवंतता एक ऐसा महत्वपूर्ण कारण रही है जिसने वर्मा जी के उपन्यासों को लोकप्रियता के शिखर पर पहुँचाने में विशेष सहायता की है । उनकी रोचक एवं सरस शैली के कारण वर्णन इतने स्वाभाविक एवं जीवंत बन जाते हैं कि हम किंचित प्रयत्न मात्र से अपनी कल्पना के द्वारा उस दृश्य का प्रत्यक्ष अवलोकन कर सकते हैं । चित्रलेखा का नृत्य चित्रण इस तथ्य का सुन्दर प्रमाण है -

`सारंगी ने मृदंग के गम्भीर ताल के साथ कल्याण के स्वर भरे, वह हलका-सा हर्ष से पूरित जनरव, जो चित्रलेखा के प्रवेश के साथ ही आरम्भ हुआ था, एक क्षण में शान्त हो गया । चित्रलेखा के सुन्दर कमल-से कोमल पैरों ने घुंघरूओं के साथ सम पर ताल दी और नृत्य प्रारम्भ हो गया । चित्रलेखा जिस स्थल पर जाती थी, विद्युत की भाँति चमक उठती थी । मृदंग का ताल मानों मेघों का गम्भीर गर्जन था । चारों ओर गहरा सन्नाटा छाया हुआ था । प्रत्येक व्यक्ति मन्त्रमुग्ध-सा कला के सर्वोच्च प्रदर्शन को निरख रहा था ।`[2]

-----------------------------

1- चित्रलेखा- पृ० 117
2- ,, पृ० 38

'सीधी सच्ची बातें' में इजिप्ट की पश्चिमी सीमा के रेगिस्तानी भाग में जर्मन तथा भारतीय सेना के बीच हो रहे युद्ध के वातावरण को उपन्यासकार ने बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया है। यह वर्णन मात्र कुछ पंक्तियों में न होकर पात्रों को उस स्थिति में रखकर विस्तृत विवरण के रूप में किया गया है। पात्रों के वार्तालाप, और विचार-विमर्श के द्वारा वर्मा जी ने युद्ध के वातावरण को साकार करदिया है। प्रस्तुत उपन्यास के अठारवें परिच्छेद के पूर्वार्द्ध में युद्ध-स्थल के सम्पूर्ण परिवेश एवं उसमें सैनिकों की मन:स्थिति को चित्रित किया गया है। इसी प्रकार वर्मा जी के उपन्यासों में मन्दिरों, सब सार्वजनिक स्थलों आदि के वर्णन तो मिलते हैं, किन्तु ऐसे स्थलों पर स्थूल -चित्रण की अपेक्षा उनकी शैली विचारात्मक हो गई है।

वर्मा जी के उपन्यासों की भाषा-शैली के पृथक-पृथक अनुशीलन के पश्चात् उनके उपन्यासों में प्राप्त कतिपय दोषों की चर्चा कर लेना भी असंगत न होगा।

उनके उपन्यासों में कहीं-कहीं लिंग दोष एवं वाक्य दोष भी मिल जाते हैं जैसे-

(1) इस अकारण अपमान का बदला मुझे चुकानी है ही है। (भूले बिसरे चित्र-पृ०37)

(2) घोड़े पर सवार होकर मैं शिवप्रताप के दो एक मेली-मुलाकातियों के यहाँ हो आया कि सम्भव है वह वहीं कहीं ठहरी हो।-(भू०-पृ० 300)

(3) विद्या ने अनुभव किया कि चुभनेवाले और काटनेवाले हिम-सदृश जीवन का मुकाबला कर सकती है हृदय की उष्णता और धमनियों में निरंतर गति से संचरित होनेवाला गरम रक्त। (भू०-667)

(4) 'जो फिक्र मेरे साथ उतनी नहीं है जितनी उलझन है।' (सी०-79)

(5) 'यह क्या साला गंगा-वंगा नहाकर होगा।' (सी०-22)

(6) जिसे किसी विदेशी कम्पनी ने किराए पर ली है-(प्रश्न और मरीचिका-पृ० 353)

प्रथम तीन वाक्यों में क्रिया में लिंग दोष तो मुद्रण की असावधानी के कारण हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है। अन्य उदाहरणों में त्रुटिपूर्ण प्रयोग उपन्यासकार की असावधानी के कारण ही हुए हैं। इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं एक ही शब्द का स्त्रीलिंग और पुल्लिंग में प्रयुक्त होना कई बार खटकता है जैसे 'एक शांत, स्निग्ध,पुलक-भर था'-(सीधी-सच्ची बातें-पृ० 10) 'एक पुलक-सा अनुभव हो रहा था उसे'-(सीधी सच्ची बातें-पृ० 40) 'लेकिन दोनों के अन्दर एक-दूसरे से निकटता का एक उल्लास था, एक पुलक थी-(रेखा-पृ०38)

डॉ० रांगेय राघव द्वारा रचित उपन्यास 'सीधा सादा रास्ता' की भूमिका में डॉ० रामविलास शर्मा ने 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' की भाषा के संबंध में कुछ आपत्तियाँ उठायी हैं, जैसे—

1- अवधी का त्रुटिपूर्ण उपयोग [1]
2- वर्मा जी की अकारान्त-प्रियता उदाहरण जिला का सदर, ताल्लुका का उतराधिकारी, ताल्लुका के स्वामी, टोंड़ी बच्चा के अर्थ आदि ।
3- औचित्य दोष - 'पर अभी फिलहाल विरोध की गुंजाइश नहीं है' पृ० 95 'एक नया दृष्टिकोण देखा' -( पृ० 71) , 'उस पर बड़ी तेजी केसाथ अवलोकन कर गये' (पृ० 142)
4- पिस्तौल का स्त्री लिंग और पुल्लिंग दोनों रूपों में प्रयोग(पृ०65)

डॉ० शर्मा की उपर्युक्त आपत्तियाँ कदापि अनुचित नहीं है, उपन्यासों की भाषा कीसहज-सरल गति में इनसे व्यतिक्रम अवश्य उपस्थित होता है । मात्र थोड़ी सी सावधानी से कार्य लेने पर इन दोषों से मुक्त हुआ जा सकता था, किन्तु भाषा के त्रुटिपूर्ण प्रयोग के सम्बंध में विद्वान समीक्षक डॉ० शर्मा की टिप्पणी भी कम रोचक नहीं है -" जब शिक्षा और विद्वता के आदर्श पं० रामनाथ तिवारी हों तो भाषा में ऐसी भूलें क्षम्य समझी जानी चाहिए ।"[2] इस प्रसंग में हमारा निवेदन है यह है कि उपर्युक्त दोषों का कारण वर्मा जी की भाषा विषयक अज्ञानता एवं अक्षमता नहीं है वरन् असावधानी के कारण ऐसी थोडी-बहुत भूलें उनके उपन्यासों में रह गयी हैं जो भाषा के समग्र प्रभाव में नगण्य-सी हैं ।

इन अत्यल्प दोषों की तुलना में वर्मा जी के उपन्यासों की भाषा-शैली की स्वाभाविकता, सहजता एवं बोधगम्यता अपना अत्यधिक मोहक प्रभाव डालती है । एक मनीषी आलोचक का विचार हैकि 'रचनात्मक साहित्य में यदि कोई सबसे महत्व की चीज है, तो वह हार्दिकता है --- यदि रचना में हृदय का सहयोग है, तो सारे दोषों के बावजूद भी वह महत्वपूर्ण है ; बल्कि मैं तो एक पग आगे की ओर बढ़कर कहने का साहस करूँगा कि रचना उन्हीं तथाकथित दोषों के कारण अच्छी है ।"[3] इस कथन की कसौटी पर कसने से वर्मा जी की भाषा अखरती नहीं है । वर्मा जी की रचनाओं में हृदय का पूर्ण सहयोग रहा है, इसी कारण उन्होंने अपने सभी उपन्यासों में पात्रों के मन की भाषा पढ़कर अपनी

---

1- इस सम्बंध की चर्चा प्रस्तुत अध्याय के पिछले पृष्ठों में की जा चुकी है ।
2- सीधा सादा रास्ता- भूमिका-डा० रामविलास शर्मा-पृ० 18
3- डा० देवराज उपाध्याय-जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन-पृ०63

भाषा-शैली का रूप सँवारा है।

भाषा-शैली के विस्तृत विवेचन से जिस तथ्य की ओर हमारा ध्यान सर्वाधिक आकर्षित होता है, वह यह है कि वर्मा जी के सभी उपन्यासों में 'चित्रलेखा' की भाषा-शैली सर्वाधिक प्रभावशाली रही है। 'चित्रलेखा' के समर्थक समीक्षकों एवं कटु आलोचकों-सभी ने उसकी काव्यात्मक गद्यशैली की भूरिशः प्रशंसा की है। इस दृष्टि से डा० सत्यपाल चुघ[1], श्री रामप्रकाश कपूर,[2] श्री शिवनारायण श्रीवास्तव,[3] डा० गणेशन[4] डा० कुसुम वार्ष्णेय[5] सभी मिलकर एक हो गये हैं।'चित्रलेखा' की काव्यात्मक भाषा-शैली को छोड़कर वर्मा जी के सभी उपन्यासों की भाषा-शैली लगभग एक जैसी रही है।

अंततः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में आवश्यकतानुसार बहुरंगी भाषा एवं शैली के विविध रूपों का उपयोग किया है। भाषा पर उनका अधिकार है, विषय एवं पात्र की स्थिति के अनुकूल भाषा-शैली का रूप ढढ़ने की उनमें पूर्ण क्षमता दृष्टिगत होती है। उपन्यास की भाषा के अनुकूल वर्मा जी की भाषा जहाँ प्रायः सहज सरल गतिशील रोचक एवं प्रसाद गुण-सम्पन्न है, वहीं अवसरानुकूल भाषा का पैनापन, लाक्षणिकता एवं सामासिकता उसे साहित्यिक सौष्ठव से विभूषित कर देती है। कहावतों, मुहावरों एवं लोकोक्तियों के प्रयोग से वर्मा जी की भाषा अधिक सशक्त परिमार्जित एवं व्यंजनात्मक हो गयी है, तथापि वह क्लिष्टता एवं कृत्रिमता के दोषों से सर्वत्र मुक्त रही है। वर्मा जी के उपन्यासों की लोकप्रियता में उनकी भाषा-शैली का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

---

1- 'चित्रलेखा की भाषा सामान्य काव्यमय चमत्कारों,चुस्त वाक्यगठन तथा लयमयी प्रवहमयता के माधुर्य से आपूर्ण है। इसके अतिरिक्त यह स्थान-स्थान पर रागपूर्ण भी है।'-'प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि'-पृ० 432-433

2- "भाषा में वर्मा जी का कवि रूप आलोकित हो उठा है। भाषा में प्रवहमयता के कारण संगीत, एक लय और गति मिलती है-चित्रलेखा सी सुन्दर काव्यात्मक,मृदु और संगीतमय भाषा वर्मा जी के अन्य उपन्यासों में नहीं मिलती है।"-हिन्दी के सात युगान्तकारी उपन्यास-पृष्ठ- 106-107 के आधार पर।

3- 'भाषा पात्रानुकूल एवं सरस है। उसमें नाटकीय रसमयता है।' -हिन्दी उपन्यास-पृष्ठ-233

4- 'अपनी दार्शनिकता और प्रभावपूर्ण शैली लिए यह तत्कालीन उपन्यासों में अकेला खड़ा है।'-हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन-पृष्ठ-78

5- 'चित्रलेखा' के कथा प्रवाह को गति देने में उसकी भाषा का महत्वपूर्ण योग है।भाषा में चित्रात्मकता और कवित्व की मात्रा इतनी अधिक है कि पाठक उस धारा-प्रवाह में बहता चला जाता है। पाठक की भावात्मक संवेदना भाषा की सरसता से उभरती चली गयी है।'-भगवतीचरण वर्मा-'चित्रलेखा' से 'सबहिं नचावत राम गोसाईं तक-पृ० 80

00000000